युग-छाया

(युग-प्रतीक एकांकी नाटकों का संकलन)

सम्पादक

शिवदानसिंह चौहान

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली : पटना

मूल्य : रु० २·५०

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक : स्काईलार्क प्रिंटर्स, दिल्ली

सूची

श्री विक्रमादित्य

डॉक्टर रामकुमार वर्मा

पात्र

श्री विक्रमादित्य—शकारि अवन्तिनाथ
विभावरी (भूमक)—छद्मवेशी शक कुमार
पुष्पिका—उज्जयिनी-निवासिनी, उद्यान-रक्षिका, प्रहरी, वधिका

स्थान—उज्जयिनी
काल—सन् ५७ ई० पू०

श्री विक्रमादित्य

[श्री विक्रमादित्य (आयु २६ वर्ष) की न्याय-सभा का बाहरी कक्ष। एक सिंहासन है, जिसके दोनों ओर सिंह की दो विशाल प्रतिमाएँ हैं। सिंहासन के पीछे एक मेहराब है, जिसके मध्य में सूर्य-मण्डल है। शिल्प-कला से सजाये गए पत्थरों पर बेल-बूटेदार आकृतियाँ हैं, जिनमें कमल और उसके चारों ओर मृणाल की जाली है। फर्श भी रंगीन पत्थरों का है और उसमें सरोवर की लहरों का आभास है। मेहराब से हटकर एक वातायन है, जिससे कुछ दूर पर शिप्रा का प्रवाह दीख रहा है। कमरे में सुगन्धित द्रव्य का धूम है और चारों ओर रंगीन प्रकाश की शलाकाएँ हैं। द्वार के समीप काठ का एक त्रिभुज है, जिसमें एक घण्टा लटक रहा है।

सिंहासन पर श्री विक्रमादित्य आसीन हैं। देवतुल्य शरीर, घुटने तक लम्बी बाँहें, प्रशस्त ललाट, चौड़ा और ऊँचा वक्षःस्थल, कटि प्रदेश पुष्ट जैसे 'विश्वकर्मा ने अपने चक्र-यन्त्र पर चढ़ाकर उनकी आकृति और शोभा को और भी चमका दिया।' उनकी कमर में अपराजित खड्ग कसा हुआ है, जो 'उनके पुरुषार्थ-रूपी सागर की उच्छल तरंग' है। वह राजसी वस्त्र पहने हुए हैं। सिर पर रत्न-जटित मुकुट है।

मंच की सीढ़ियों पर दाहिनी ओर एक युवती विभावरी (आयु २२ वर्ष) खड़ी है। मोतियों से परिपूर्ण सीमान्त और वेणी में बन्धूक-पुष्प। कन्धों पर हरा उत्तरीय और कमर में पीले रेशम का कटिबन्ध। वक्ष पर मोतियों की माला और पुष्पहार। उसका शेष शृङ्गार फूलों का ही है।

कक्ष में इस समय केवल ये दोनों ही हैं। गम्भीर घोष से श्री

विक्रमादित्य मौन भंग करते हैं ।]

विक्रमादित्य—आश्चर्य है, उज्जयिनी में तुम्हारा अपमान हुआ ।

विभावरी—सम्राट्, उस अपमान की यन्त्रणा से आज दिन-भर रुदन करने के कारण मेरे कण्ठ की विकृति हो गई है ।

विक्रमादित्य—आर्य-नारियाँ रुदन नहीं करतीं । तुम्हारा नाम क्या है देवी ?

विभावरी—विभावरी, सम्राट् !

विक्रमादित्य—विभावरी, कहाँ की निवासिनी हो ?

विभावरी—विदिशा में मेरा निवास है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—उज्जयिनी में कब से निवास कर रही हो ?

विभावरी—शरद्-पूर्णिमा के पर्व से । एक मास से कुछ ही अधिक समय हुआ ।

विक्रमादित्य—यहाँ तुम आयी किस लिए थीं ?

विभावरी—पुण्यतीर्था उज्जयिनी में शिप्रा-स्नान के लिए ।

विक्रमादित्य—कितने दिन से शिप्रा-स्नान कर रही हो ?

विभावरी—पिछले तीन वर्षों से, सम्राट् !

विक्रमादित्य—प्रत्येक वर्ष तुम यहाँ एक मास से अधिक ठहरती हो ?

विभावरी—नहीं सम्राट्, जब से आपका शासन हुआ है तब से यहाँ अधिक ठहरने लगी हूँ ।

विक्रमादित्य—क्यों ?

विभावरी—सम्राट्, आपके शासन में उज्जयिनी की पवित्रता नक्षत्रों की पवित्रता के समान है । यहाँ चारणों के भैरव राग में पुष्पों ने अपनी पंखुड़ियाँ खोलना सीखा है । जो नगरी अपने वैभव के स्तूपों में अपने हाथ फैलाकर आपके चरणों की वन्दना कर रही है, वह नगरी मेरे लिए इतना आकर्षण क्यों न रखे सम्राट् ?

विक्रमादित्य—इसे मैं कैसे सत्य समझूँ जब विभावरी-जैसी आर्य-

नारी अभियोगिनी के रूप में मेरे सामने उपस्थित है ?

विभावरी—यह मेरा भाग्य-दोष है, सम्राट् ! सूर्य का आलोक कण-कण को प्रकाशित करता है, किन्तु पहाड़ की कन्दरा में अन्धकार ही रहता है। यह सूर्य का दोष नहीं है प्रभो, यह कन्दरा का दोष है जो पत्थरों को तोड़कर उनमें छिपकर बैठ गई है।

विक्रमादित्य—यदि तुम ऐसा समझती हो देवी, तो अभियोगिनी बनकर मेरे सामने क्यों खड़ी हो ? यदि यह स्वयं तुम्हारा दोष है तो तुमने राज-मर्यादा की शान्ति में बाधा क्यों डाली ? उस दोष के दण्ड को सहन करने की शक्ति तुममें होनी चाहिए।

विभावरी—सम्राट्, यदि मैं दण्ड सहन कर लूँगी तो इस दण्ड का द्वार भविष्य में अन्य स्त्रियों के लिए भी खुल जाएगा। आज मैं अपमानित हुई हूँ, यदि इसकी सूचना मैं आपके बाहुबल को न दूँ तो कल दूसरी स्त्री भी अपमानित हो सकती है।

विक्रमादित्य—तुमसे पहले तो कोई स्त्री मेरे राज्य में अपमानित नहीं हुई।

विभावरी—यह आपके राज्य-शासन का गौरव है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—(**दृढ़ता से**) चुप रहो विभावरी, मैं ऐसे छद्मवेशी शब्द सुनना नहीं चाहता। ये मेरी यन्त्रणा को अधिक तीव्र करते हैं। मैं जानना चाहता हूँ, तुम्हारा अभियोग क्या है ?

विभावरी—सम्राट्, लज्जा मेरे शब्दों को रोक रही है।

विक्रमादित्य—मुझे आश्चर्य हो रहा है, तुम आर्य-नारी किस प्रकार हो ? तुमने इस अपमान पर आज दिन-भर रुदन किया, जो आर्य-नारी की मर्यादा के प्रतिकूल है। फिर उस अपमान के कहने में तुम्हें लज्जा हो रही है। आर्य-नारियाँ अपना अपमान ज्वालामय शब्दों में कहती हैं, लज्जा के स्वरों में नहीं।

विभावरी—मैं बहुत दुःखी हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तब तो तुम्हें और भी निर्भीक होना चाहिए। भारत

की दु:खिनी नारी क्रान्ति की ज्वाला है, उसे कोई रोक नहीं सकता। वह उठती है तो सुगन्धिमय धूम की भाँति, और आकाश तक उसकी उदारता फैल जाती है; वह गिरती है तो बिजली की भाँति, और उससे पाताल का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है।

विभावरी—सत्य है सम्राट् !

विक्रमादित्य—फिर तुमने यह याचना की थी कि तुम्हारा अभियोग न्याय-सभा के बाहरी कक्ष में एकान्त में सुना जाए। यह याचना भी तुम्हारी स्वीकार हुई। मैंने अपनी सभा के सदस्यों और मन्त्रियों को यहाँ से हटा दिया। इस समय हम लोग एकान्त में हैं। तुम निर्भीक होकर अपना अभियोग मुझे सुना सकती हो।

विभावरी—(**हाथ जोड़कर**) मैं सम्राट् की कृतज्ञ हूँ।

विक्रमादित्य—कृतज्ञ होने की बात नहीं है। सम्राट् प्रजा का पिता है। यदि आवश्यकता होगी तो मैं इसी स्थल पर तुम्हारे अभियुक्त को दण्ड भी दे सकूँगा।

विभावरी—यह आपकी कृपा है, प्रभो !

विक्रमादित्य—अपना अभियोग स्पष्ट करो। किसमें इतनी शक्ति है जो उज्जयिनी में नारी का अपमान करे ?

विभावरी—सम्राट्, आज प्रातःकाल उषा-वेला में मैं इसी शिप्रा (**वातायन की ओर संकेत**) के किनारे वायु-विहार के लिए गयी थी। वहाँ पुष्पराग-उद्यान की सुगन्धि ने मुझे आकर्षित किया और मैंने उसमें प्रवेश किया। शीतल समीरण बह रहा था, अनेक भाँति के पुष्प खिले हुए थे···

विक्रमादित्य—(**बीच में ही**) मैं इस समय काव्य नहीं सुनना चाहता, अभियोग सुनना चाहता हूँ।

विभावरी—क्षमा चाहती हूँ सम्राट्, मैं संक्षेप में कहूँगी। पुष्पराग-उद्यान में पुष्पों की विविधता देखकर मेरे मन में इच्छा हुई कि मैं सूर्य भगवान् की पूजा के निमित्त कुछ पुष्प-चयन कर लूँ। जिस समय मैं पुष्प-चयन कर रही थी उसी समय एक दूसरी स्त्री मेरे समीप आयी।

उसने प्रेम से मेरी ओर देखकर निवेदन किया, "क्या मैं आपकी सहायता कर सकती हूँ ?" उसका प्रेम-भाव देखकर मैंने उसकी सहायता स्वीकार कर ली। पुष्प-चयन के उपरान्त उसने मेरी वेणी में पुष्प गूँथने की इच्छा प्रकट की। सम्राट्, सौन्दर्य-प्रिय होने के कारण मैंने यह भी स्वीकार किया। जिस समय मेरी वेणी में वह पुष्प गूँथ रही थी, उस समय मेरे कण्ठ में उसका स्पर्श अस्वाभाविक ज्ञात हुआ।

विक्रमादित्य--(**चौंककर**) अस्वाभाविक ? (**सिंहासन से उतर पड़ते हैं।**)

विभावरी—सम्राट्, उसके स्पर्श से मुझे पुरुष-स्पर्श का संकेत मिला।

विक्रमादित्य—(**स्तम्भित होकर**) पुरुष-स्पर्श ? तो क्या वह नारी-वेश में पुरुष था ?

विभावरी—मैं यही सोचती हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तुमने उसी समय अपने अपमान का प्रतिकार किया ?

विभावरी—सम्राट्, मुझे भय था मैं कहीं अधिक अपमानित न हो जाऊँ ?

विक्रमादित्य—तुम्हारे पास कोई शस्त्र था ?

विभावरी—हाँ सम्राट्, मेरे पास शस्त्र था। वह अब भी है। देखिए, यह दन्तिका। (**कटिबन्ध से दन्तिका निकालकर दिखलाती है।**)

विक्रमादित्य—तुमने इसका प्रयोग किया ?

विभावरी—सम्राट्, मुझे आपके न्याय में अधिक विश्वास है।

विक्रमादित्य—विभावरी, तुम आर्य-नारी हो। तुमने अपने कुल को कलंकित किया है। साथ ही मुझे भी, अपने सम्राट् को। तुम इस प्रकार अपमानित हो जाओ और शक-स्त्रियों की भाँति रोने लगो ? तुम्हें अपनी असमर्थता पर लज्जा नहीं आई ? तुम्हारी माता को आत्म-हत्या करनी चाहिए। तुम्हारे पिता को देश से भाग जाना चाहिए। शक्ति-हीना नारी, भारत के भविष्य की संरक्षिका को अपमान का प्रतिकार करना भी न आया ? (**अशान्ति से शीघ्र गति में टहलने लगते हैं।**)

विभावरी—सम्राट्, मुझे क्षमा कीजिए। विदिशा में रहने वाली नारी को अभी उज्जयिनी की नारी से बहुत-कुछ सीखना है। आपके व्यक्तित्व के प्रभाव से तो उज्जयिनी की नारी दुर्गा और सरस्वती दोनों का ही रूप धारण कर सकती है।

विक्रमादित्य—(**घृणा से**) अयोग्य नारी, इस तिल की ओट में तुम पर्वत को नहीं छिपा सकतीं। यह कारण तुम्हारी असमर्थता की रक्षा नहीं करेगा।

विभावरी—(**हाथ जोड़कर**) सम्राट्, मैं भी दण्ड की पात्री हूँ।

विक्रमादित्य—निःसन्देह, नारी-अपमान के लिए मैं अभियुक्त को निर्वासित तो करूँगा ही, साथ-ही-साथ तुम्हें भी साधना की अग्नि में तपकर सच्ची नारी बनना होगा।

विभावरी—मैं दण्ड सहन करने के लिए प्रस्तुत हूँ, प्रभो !

विक्रमादित्य—और तुम्हारा अभियुक्त कहाँ है ?

विभावरी—मैं उसे पुष्पराग-उद्यान की द्वार-रक्षिका से बन्दी कराकर ले आई हूँ। वह इस समय द्वार-रक्षिका के साथ बाहर है।

विक्रमादित्य—(**अशान्त होकर**) उज्जयिनी में कभी ऐसा अभियोग मेरे सामने उपस्थित नहीं हुआ। विभावरी, तुमने आज मुझे यह सोचने के लिए बाध्य किया है कि इतने युद्ध करने के उपरान्त, इतने शत्रुओं को मालवा, सौराष्ट्र और गुर्जर से निर्वासित करने के उपरान्त, भी मैं उज्जयिनी की सामाजिक व्यवस्था ठीक करने में असमर्थ रहा। आज भी उज्जयिनी में नारी अपमानित हो सकती है।

विभावरी—हाँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—(**तीव्र स्वर में**) विभावरी !

विभावरी—(**विह्वल होकर**) सम्राट्, क्षमा हो। जिस नगरी की वाणी ने ही शिप्रा का रूप धारण कर लिया हो वहाँ मेरी वाणी में यदि कुछ भूल हो तो क्षमा कीजिए, किन्तु अपनी आत्मा का चीत्कार मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ, प्रभो ! मैं लांछित हुई हूँ, मेरे आत्म-सम्मान की

अवहेलना…

विक्रमादित्य—(रोककर) बस, अब मैं अधिक नहीं सुन सकूँगा। तुम्हारे अभियोग ने मेरे पराक्रम की सहस्र भुजाओं को शक्तिहीन सिद्ध कर दिया है। मैं अब तक अपनी शक्ति का विश्वासी था। आज वह विश्वास तुम्हारे अभियोग में समाप्त हो रहा है। मेरे राज्य में नारी का अपमान हो, यह मेरे लिए अपमान की बात है।

विभावरी—आप सम्राट्-श्रेष्ठ हैं, प्रभो!

विक्रमादित्य—चुप रहो विभावरी, इन शब्दों से तुम मुझे पीड़ा पहुँचा रही हो। मैंने विक्रमादित्य का विरुद धारण किया था। क्या मेरे इस साहस की भावना पर तुम्हारा अभियोग हँस नहीं रहा है? मैं उस विरुद का परित्याग करूँगा। तुमने विक्रम की ऐसी पताका भी कहीं देखी है जो अन्याय और अव्यवस्था के दण्ड में सजी हो? तुम ऐसे सूर्य की कल्पना कर सकती हो जिसकी किरणों से अन्धकार निकलता हो? विक्रमादित्य अन्याय और अव्यवस्था का प्रतीक हो, यह असम्भव है, यह असम्भव है।

विभावरी—सम्राट्! शान्त हों।

विक्रमादित्य—अयोग्य व्यक्ति कभी शान्त नहीं हो सकता। मैं अयोग्य हूँ। कालिदास ने व्यर्थ ही मेरी प्रशंसा की है। मुझे पहचानने में महाकवि ने भी भूल की।

विभावरी—नहीं प्रभो, मैंने आपको कष्ट पहुँचाने में भूल की है।

विक्रमादित्य—नहीं, मैं विक्रमादित्य नाम का परित्याग करूँगा। मेरे लिए केवल यही मार्ग है, केवल यही। किन्तु इसके पूर्व मैं नारी के सम्मान की पूर्ण व्यवस्था कर जाऊँगा। हाँ, तुम्हारा अपराधी बाहर है? मैं उस नर-पिचाश को देखना चाहता हूँ जो अपने छद्मवेश में नारियों का अपमान करता फिरता है; जो पुरुष होकर अपने पुरुषत्व को नारी के वस्त्रों में छिपाए हुए है; जिसने विक्रमादित्य की सत्ता को विलासियों की शृंगार-शाला समझ रखा है। (**द्वार के समीप पहुँचकर घण्टे**

पर चोट करते हैं, फिर लौटकर विभावरी से) तुम्हें मेरे न्याय में अधिक विश्वास है ! मैं आज एकाकी न्याय करूँगा। न्याय-सभा का सारा अधिकार अपने बाहु-बल में केन्द्रित करके अपराधी को कठोर दण्ड दूंगा। **(प्रहरी का प्रवेश; वह अपना भाला झुकाकर प्रणाम करता है।)**

विक्रमादित्य—प्रहरी, बाहर जो बन्दिनी द्वार-रक्षिका के अधिकार में है, उसे यहाँ उपस्थित होने की आज्ञा सुनाओ।

प्रहरी—जो आज्ञा। **(प्रणाम करके प्रस्थान)**

विक्रमादित्य—**(विभावरी से)** तुम मेरा न्याय देखना चाहती हो ? किन्तु सुनो विभावरी, मैं ऐसी नारी से घृणा करता हूँ जो अपना सम्मान स्वयं सुरक्षित नहीं रख सकती। नदी पहाड़ से कहे कि तुम मेरे लिए किनारा बना दो, बिजली बादल से कहे कि मुझे तड़पना सिखला दो, और नारी राजा से कहे कि मेरा न्याय कर दो ! नारी, भारतवर्ष को संसार में लज्जित होने से बचाओ, विदेशियों से पद-दलित होने पर भी देश की मर्यादा सुरक्षित रहने दो।

[द्वार-रक्षिका का अभियुक्त (आयु २४ वर्ष) के साथ प्रवेश। द्वार रक्षिका श्वेत वस्त्र धारण किये हुए है। काले रेशम का कटिबन्ध। कबरी में पुष्प-शृंगार और हाथ में शूल। अभियुक्त पाटल रंग का उत्तरीय और नीले रंग का कटिबन्ध पहने है। गले में स्वर्ण-माला। केशों में कुन्द-पुष्प। माथे में स्वस्तिक-तिलक। हाथों में पुष्प-वलय और पैरों में नूपुर धारण किए हुये है। दोनों का अभिवादन। द्वार-रक्षिका अभियुक्त को सामने उपस्थित करके द्वार पर जाकर खड़ी हो जाती है।]

विक्रमादित्य—**(द्वार-रक्षिका से)** तुम बाहर मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करो।

द्वार-रक्षिका—**(सिर झुकाकर)** जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

विक्रमादित्य—**(अभियुक्त को गहरी दृष्टि से देखकर विभावरी से)** यही तुम्हारा अभियुक्त है ?

विभावरी—**(उद्वेग से)** सम्राट, यही अभियुक्त है। इसी ने मेरा

अपमान किया है, यही वह दुष्ट है, यही वह छद्मवेशी है जिसने•••

विक्रमादित्य—(**हाथ बढ़ाकर**) रुको विभावरी, तुम मेरे न्याय-कक्ष में हो। (**अभियुक्त से**) अभियुक्त, तुम विक्रमादित्य की परीक्षा लेना चाहते हो कि वह अपनी व्यवस्था में सतर्क है या नहीं ? छद्मवेशी अभियुक्त, तुम नारी-वेश में पुरुषत्व का अपमान और नारीत्व की अवहेलना करने वाले कौन हो ?

अभियुक्त—(**हिचकते हुए**) सम्राट् !

विक्रमादित्य—(**तीव्रता से**) तुम्हारा नाम क्या है ?

अभियुक्त—(**रुकते हुए शब्दों में**) सम्राट्, मैं•••मैं•••पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य—मैं जानता हूँ कि तुम पुरुष हो—पुरुषत्व को लज्जित करने वाले पुरुष। तुम्हारा क्या नाम है ? विक्रमादित्य के सामने तुम असत्य भाषण नहीं कर सकोगे। मेरे अधिकार में अग्नि है, (**तलवार पर हाथ रखकर**) 'अपराजित' की तीक्ष्ण धार है और बधिक का तीक्ष्ण कृपाण। सत्य और धर्म के सोपान पर सुसज्जित पवित्र न्याय के सामने अपने नाम के अक्षर दुहराओ।

अभियुक्त—(**विह्वल होकर**) सम्राट्•••सम्राट्•••मुझे क्षमा करें••• मैं•••स्त्री•••हूँ।

विक्रमादित्य—तुम स्त्री हो ? यह तो सभी देखने वाले जान सकते हैं, किन्तु मैं तुम्हारे पुरुषत्व की परिभाषा जानना चाहता हूँ।

अभियुक्त—सम्राट्, मैं स्त्री हूँ। मेरा नाम पुष्पिका है।

विभावरी—(**तीव्रता से**) यह झूठ बोलता है, इसका यह नाम नहीं है।

विक्रमादित्य—(**मुस्कराकर**) नाम तो बहुत सुन्दर है, किन्तु तुम्हारा वास्तविक नाम क्या है ? तुम विक्रमादित्य के न्याय के सामने हो, असत्य भाषण नहीं करोगे।

अभियुक्त—सम्राट्, मैं क्या कहूँ, मेरी समझ में नहीं आता••हाँ, मैं पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य—दण्ड के भय से उद्भ्रान्त मत बनो अभियुक्त ! भगवान् महाकालेश्वर की आन पर तुम असत्य भाषण नहीं करोगे ।

अभियुक्त—सम्राट् के सामने यह साहस किसी का नहीं हो सकता ।

विक्रमादित्य—अभियोग कहता है कि तुम पुरुष हो । तुमने विभावरी का अपमान किया है । क्या यह सच है ?

अभियुक्त—हाँ सम्राट्, यह सच है । **(रुककर)** नहीं-नहीं, यह सत्य नहीं है ।

विक्रमादित्य—**(तीक्ष्णता से)** स्थिर रहो अभियुक्त, तुम कहाँ के निवासी हो ?

अभियुक्त—सम्राट्, मैं उज्जयिनी में निवास करती हूँ ।

विक्रमादित्य—**(दृढ़ता से)** तो तुम स्त्री हो ? अभियुक्त, असत्य भाषण करने पर कठोर दण्ड मिलेगा । अपनी वास्तविकता स्वीकार करो ।

अभियुक्त—सम्राट्, मेरा नाम पुष्पिका है । मैं उज्जयिनी की निवासिनी हूँ ।

विक्रमादित्य—इसका प्रमाण ?

अभियुक्त—मैं सम्राट् के राज्यारोहण के समय उपस्थित थी । उस समय सम्राट् ने उज्जयिनी की प्रत्येक नारी को जो स्वर्ण-मुद्राएँ दी थीं, वे मेरे कण्ठहार में अब तक सुसज्जित हैं । देखिए । **(अपना कण्ठहार दिखलाती है ।)**

विक्रमादित्य—किन्तु वे मुद्राएँ तुम्हारे द्वारा चुराई भी तो जा सकती हैं ?

अभियुक्त—सम्राट्, उज्जयिनी की प्रत्येक नारी आपकी मुद्रा को गौरव का चिह्न समझती है । वह उसे चोरी नहीं होने दे सकती और सम्राट्, उज्जयिनी में चोरों का निवास नहीं है ।

विक्रमादित्य—मैं यह बात सुनकर प्रसन्न हूँ, किन्तु तुम पर अभियोग है कि तुम पुरुष हो । क्या तुम पुरुष हो ?

अभियुक्त—**(दृढ़ता से)** सम्राट्, मैं पुरुष नहीं हूँ । **(विभावरी काँप**

जाती है।)

विक्रमादित्य—विभावरी, तुम काँप उठीं, इतना क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अभी निर्णय करता हूँ। (**अभियुक्त से**) अभियुक्त, क्या मैं प्रहरी को आज्ञा दूँ कि वह तुम्हारा वेश-विन्यास परिवर्तित करे ?

अभियुक्त—सम्राट्, उज्जयिनी की नारी को प्रहरी द्वारा अपमानित होने से रोकने की कृपा कीजिए।

विक्रमादित्य—क्या तुम पुरुष नहीं हो, अभियुक्त ?

अभियुक्त—नहीं सम्राट्, मैं वचन दे चुकी हूँ कि अपने सम्राट् के सामने असत्य भाषण नहीं करूँगी।

विक्रमादित्य—(**विभावरी से**) विभावरी, क्या तुम्हारे कहने से अभियुक्त स्वीकार करेगा कि वह पुरुष है।

विभावरी—(**अभियुक्त की ओर दृढ़ता से देखकर**) अभियुक्त, तुम पुरुष हो, तुम्हारे स्पर्श में नारी का भाव नहीं था। तुमने मुझसे स्वीकार किया था कि तुम सम्राट् के सामने पुरुषत्व स्वीकार करोगे। मेरी लज्जा के लिए स्वीकार करो, अपने वचन की पूर्ति के लिए स्वीकार करो। (**अभियुक्त मौन है।**) देखो अभियुक्त, तुम चुप क्यों हो ? तुम स्वीकार क्यों नहीं करते ?

विक्रमादित्य—(**विभावरी से**) तुम्हारा कथन भी रहस्यपूर्ण है, विभावरी !

विभावरी—कोई रहस्य नहीं सम्राट् ! (**अभियुक्त से**) अभियुक्त, मैं निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि तुम पुरुष हो। मेरी ओर देखकर कहो कि मैं पुरुष हूँ।

अभियुक्त—(**विभावरी की ओर देखकर**) अच्छा तो मैं पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य—(**क्रुद्ध होकर 'अपराजित' म्यान से निकालकर**) सावधान, तुम सत्य से खिलवाड़ कर रहे हो अभियुक्त ! राज-मर्यादा का अपमान करने के कारण तुम्हें कठोर दण्ड दिया जाएगा। ज्वालामुखी के

मुख पर बैठकर तुम अंजलि के जल से अपनी रक्षा करना चाहते हो **(जोर से)** प्रहरी !

अभियुक्त—**(घुटने टेककर)** सम्राट्, क्षमा करें। मैं अपराधिनी हूँ। मैं आपकी करुणा का दान चाहती हूँ। **(प्रहरी का प्रवेश; वह प्रणाम करता है।)**

विक्रमादित्य—**(अभियुक्त से)** तो तुम पुरुष नहीं हो ? अभी विभावरी की ओर देखकर तुमने कहा कि मैं पुरुष हूँ।

अभियुक्त—मैं स्त्री हूँ। अपने सम्राट् के सामने असत्य भाषण नहीं कर सकती।

विक्रमादित्य—इसमें कुछ रहस्य है। अच्छा तुम स्त्री ही सही। **(अकस्मात् दूसरी ओर नेपथ्य में देखकर)** ओह···इतना भयानक सर्प··· **(प्रहरी उस ओर दौड़ता है; अभियुक्ता भागकर सिंहासन के पीछे छिप जाती है।)**

विक्रमादित्य—अभियुक्ता वास्तव में स्त्री है; सर्प न होते हुए भी सर्प के नाम से वह विचलित हो गई। पुरुषों का यह लक्षण नहीं है। **(विभावरी की ओर देखकर)** तुम विचलित नहीं हुई ? **(खड्ग म्यान में रखते हैं।)**

विभावरी—मैं साहसी हूँ, सम्राट् !

अभियुक्त—**(आगे बढ़कर)** सम्राट्, क्षमा-दान करें। विभावरी पुरुष है।

विक्रमादित्य—ओह, यह रहस्य ! मैं भी अनुमान करता हूँ, विभावरी पुरुष है।

विभावरी—पुष्पिके, तुमने विश्वासघात किया ! **(अभियुक्त की ओर दृष्टि करके।)**

पुष्पिका—क्षमा हो राजकुमार, प्रयत्न करने पर भी मैं सम्राट् के सामने असत्य भाषण नहीं कर सकी।

विक्रमादित्य—**(साश्चर्य)** राजकुमार !

पुष्पिका—सम्राट्, क्षमा की भिक्षा माँगते हुए निवेदन करती हूँ कि यह विभावरी शक-राजकुमार क्षत्रप भूमक है।

विक्रमादित्य—**(आश्चर्य और क्रोध से)** शक राजकुमार भूमक! **(तलवार पर हाथ रखते हुए)** बोलो राजकुमार भूमक, तुम सौराष्ट्र के युद्ध में कहाँ रहे? क्या इसी वेश में विदिशा की नारियों के बीच छिपे हुए थे? तुम विभावरी हो? क्यों कायर राजकुमार? तुम्हें अपनी माता का स्तन्य लज्जित करते हुए संकोच नहीं हुआ? स्त्री-वेश में तुम्हें अपने पुरुषत्व को कलंकित करते हुए क्षोभ नहीं हुआ? और फिर तुम्हीं अभियोग लाए थे? स्वय अपराधी होते हुए अभियोग लगाने का साहस! राज-मर्यादा में तुम्हें असत्य का अभिनय आत्म-हत्या करने से अच्छा ज्ञात हुआ? कायरता की प्रतिमूर्ति राजकुमार भूमक!

भूमक—मैं कायर नहीं हूँ, सम्राट्!

विक्रमादित्य—तुम कायर नहीं हो? तुम इतने तुच्छ हो कि तुम्हें आय-नारी बनने की योग्यता भी नहीं आई! आर्य-नारी ने रोदन किया! उसके कण्ठ की विकृति हुई! अपना पुरुष-स्वर छिपाने के लिए कण्ठ की विकृति! उसने अपमान सहा, शस्त्र का प्रयोग नहीं किया, वह सम्मान के प्रतिशोध में सम्राट् के सामने अभियोगिनी बनी और उसे अभियोग के स्पष्ट करने में लज्जा हुई! ये सब क्या आर्य-नारियों के लक्षण हैं? मुझे पहले ही सन्देह होने लगा था। शकों में आर्य-नारियों का धर्म पहचानने की क्षमता कहाँ? तुम शक राजकुमार भूमक हो, तुम इन बातों को क्या समझो? तुम केवल स्त्री-वेश धारण करना जानते हो।

भूमक—सम्राट्, आप मेरा अपमान न कीजिए। स्त्री-वेश मैंने अपनी इच्छा से धारण किया। मैं कायर नहीं हूँ। यदि आपकी इच्छा युद्ध करने की है तो मेरे लिए भी एक तलवार लाने की आज्ञा दीजिए। मैं जानता हूँ कि मैं आप पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु शक राजकुमार मरने से डरता भी नहीं।

विक्रमादित्य—(**मुस्कराकर**) मैं यह सुनकर प्रसन्न हूँ। (**घण्टे पर चोट करते हैं।**) किन्तु विभावरी और भूमक में क्या अन्तर है, यह मैं जानना चाहता हूँ। यह सब काण्ड रहस्य के रूप में मेरे सामने क्यों उपस्थित किया गया? स्त्री और पुरुष, फिर पुरुष और स्त्री। मेरे राज्य में इस इन्द्रजाल के लिए स्थान नहीं है।

(**प्रहरी का प्रवेश**)

प्रहरी—(**प्रणाम करके**) सम्राट्, कोई सर्प नहीं दीख पड़ा।

विक्रमादित्य—यह मैं जानता हूँ। (**विभावरी की ओर संकेत करते हुए**) इस स्त्री को शस्त्रागार में ले जाकर इसे सैनिक का वस्त्र-विन्यास दो और साथ ही इसकी रुचि के अनुसार एक तलवार भी।

प्रहरी—जो आज्ञा।

विक्रमादित्य—स्त्री-वेश में मेरे समक्ष तुम अपने पुरुषत्व को अधिक देर तक लज्जित मत करो क्षत्रप-राजकुमार!

(**भूमक का सैनिक के साथ प्रस्थान**)

विक्रमादित्य—(**घूमकर पुष्पिका से**) पुष्पिके, जो पुरुष था वह स्त्री रूप में आया और जिसमें पुरुष की कल्पना थी वह स्त्री ही निकली। यह सब मेरे सामने किस षड्यन्त्र का रूप है?

पुष्पिका—सम्राट् क्षमा करें। यह मेरी व्यक्तिगत जीवन-कथा है। परिस्थितवश मुझे यह कार्य करना पड़ा। मैं लाचार थी।

विक्रमादित्य—तो तुम इस घटना-चक्र की प्रधान पात्री हो?

पुष्पिका—सम्राट्, मैं प्रधान पात्री नहीं हूँ।

विक्रमादित्य—तुम प्रधान पात्री नहीं हो? तुमने यह क्यों कहा कि मैं पुरुष हूँ?

पुष्पिका—उपकार-ऋण से मुक्त होने के लिए, सम्राट्!

विक्रमादित्य—उपकार-ऋण? किसके उपकार-ऋण से मुक्त होने के लिए?

पुष्पिका—राजकुमार भूमक ने मेरे प्रति उपकार किया था।

विक्रमादित्य—कैसा उपकार ?

पुष्पिका—सम्राट्, मैं उज्जयिनी की निवासिनी हूँ। दो वर्ष पूर्व मैं एक कार्य से गुर्जर चली गई थी। अकस्मात् शकों ने गुर्जर पर आक्रमण किया। दुर्भाग्य से मैं भी शकों के हाथों में पड़ गई। जब अन्य बन्दियों के साथ मैं वध-स्थान को ले जाई जा रही थी, उस समय एकाएक इस शक राजकुमार ने आकर मेरी रक्षा की और मुझे स्वतन्त्र किया।

विकमादित्य—तुम पर ही यह कृपा क्यों की ?

पुष्पिका—मैं नहीं जानती, सम्राट् !

विक्रमादित्य—सम्भवतः तुम्हारे सौन्दर्य के आकर्षण ने उससे यह कार्य कराया हो।

पुष्पिका—जो भी हो, सम्राट् ! किन्तु उसने मेरे आत्म-सम्मान पर आँच नहीं आने दी और साथ ही मुझे जीवन-दान दिया। सम्राट्, मुझे इतने बड़े उपकार का बदला देना था।

विक्रमादित्य—तो क्या उपकार का बदला तुम अन्याय-रूप से देतीं ?

पुष्पिका—क्षमा कीजिए, सम्राट् ! राजकुमार भूमक ने इसी बात की याचना की थी।

विक्रमादित्य—और इस क्षत्रप-राजकुमार ने स्त्री-वेश क्यों धारण किया ?

पुष्पिका—सम्राट्, जब आपने मालवा, गुर्जर और सौराष्ट्र से शकों को निर्वासित किया तो मेरे ऊपर अनुग्रह रखने वाले क्षत्रप को गुर्जर छोड़ने में कष्ट हुआ। उसने गुर्जर ही में रहना निश्चय किया, किन्तु पुरुष-वेश में रहना उसके जीवन के लिए संकट का कारण होता, इसलिए उसने स्त्री-वेश रखकर रहने में ही अपनी कुशल समझी।

विक्रमादित्य—फिर वह गुर्जर ही में क्यों नहीं रहा ?

पुष्पिका—सम्राट्, दुर्भाग्य से गुर्जर में लोगों की सन्देह-दृष्टि उस पर पड़ ही गई। इस समय मुझे उज्जयिनी भी आना था। उसने मुझसे

प्रार्थना की कि वह भी मेरे साथ उज्जयिनी चले। मैंने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

विक्रमादित्य—क्या तुम उससे प्रेम करती हो ?

पुष्पिका—सम्राट्, उपकार का बदला देना प्रेम करना नहीं कहा जा सकता।

विक्रमादित्य—क्या वह तुमसे प्रेम करता है ?

पुष्पिका—मैं कह नहीं सकती, सम्राट् ! किन्तु इस प्रकार के व्यवहार की मैंने सदैव अवहेलना की है। इस समय अधिक-से-अधिक वह मेरा भाई कहा जा सकता है।

विक्रमादित्य—यह सुनकर मैं प्रसन्न हूँ, किन्तु छद्मवेश रखने का अपराध करके भी उस राजकुमार को उज्जयिनी में आते हुए भय नहीं हुआ ?

पुष्पिका—उसे मेरे आश्रय का सबसे बड़ा बल था, सम्राट् ! वह समझता था कि मैं उसकी पूर्ण रक्षा कर सकूँगी।

विक्रमादित्य—जो तुम राज्य के समक्ष अपराधिनी होते हुए भी उसकी रक्षा नहीं कर सकीं ?

पुष्पिका—आप रक्षा कर सकते हैं, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तुम जानती हो पुष्पिके, शकों को मैं एक ही दण्ड दिया करता हूँ और वह है प्राण-दण्ड। किन्तु खेद है कि युद्ध में इस क्षत्रप ने मेरा सामना नहीं किया। फिर भी इससे उसके दण्ड की व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती। अभी एक बात तुम्हें और स्पष्ट करनी है। वह यह कि स्वयं छद्मवेश में उपस्थित होकर और तुम पर अभियोग लगाकर उसने अपने किस कार्य की पूर्ति करनी चाही ?

पुष्पिका—सम्राट्, कुछ ही दिनों में यहाँ उसे आपके आतंक और मर्यादापूर्ण शासन का ज्ञान हो गया। उसे भय था कि वह किसी समय भी न्याय-सभा के सामने उपस्थित कर दिया जाएगा। अतः उसे उज्जयिनी की प्रत्येक दिशा में सम्राट् विक्रमादित्य का कृपाण दीखने

लगा। उसने निश्चय किया कि वह शीघ्र ही कपिशा चला जाएगा, किन्तु मार्ग में उसे प्राणों का भय था, इसलिए उसने सैनिकों के संरक्षण में जाना ही उचित समझा। इसी बात के लिए उसे इस अभियोग की कल्पना करनी पड़ी।

विक्रमादित्य—(**सिर हिलाकर**) ठीक।

पुष्पिका—और सम्राट्, राज्य का यह नियम तो आपने निर्धारित कर दिया है कि नारी के अपमान का दण्ड देश-निर्वासन है। मैं उस दण्ड के अनुसार निर्वासित होती, क्योंकि मैं स्वीकार करती कि मैं पुरुष हूँ। मेरे दण्डित होने पर वह विभावरी-रूप में आपसे यह प्रार्थना भी करता कि वह स्वयं पदाघात कर मुझे राज्य की सीमा से बाहर करता। इसलिए वह भी मेरे साथ-ही-साथ सैनिकों के संरक्षण में सीमा तक पहुँच जाता और सीमा पर पहुँचकर वह आपके राज्य से निकल भागता।

विक्रमादित्य—यह रहस्य है!

पुष्पिका—यही कारण है कि उसने मेरी आँखों में आँखें डालकर मुझसे अनुरोध किया था कि मैं आपके सामने यह स्वीकार कर लूं कि मैं पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य—किन्तु, इससे अच्छा क्या यह न होता कि वह स्वयं किसी स्त्री को अपमानित करके निर्वासन का दण्ड प्राप्त करता?

पुष्पिका—सत्य है सम्राट्, किन्तु आपसे प्राण-दान पाकर भी उसे भय था कि वह मार्ग में ही किसी सैनिक द्वारा न मार दिया जाए।

विक्रमादित्य—तो इस अभियोग में तुम तो निर्वासित हो ही जातीं।

पुष्पिका—सम्राट्, एक उपकारी के लिए मैं यह भी करती, किन्तु बाद में मैं पुनः उज्जयिनी लौट आती, आपकी मुद्राओं से सुसज्जित अपना कण्ठहार दिखलाकर।

विक्रमादित्य—तो तुमने अपराधी को छिपाकर और उसकी कूटनीति में भाग लेकर राज-द्रोह किया है। तुम दण्ड की अधिकारिणी हो।

पुष्पिका—सम्राट् मैं दण्डित होने को प्रस्तुत हूँ, किन्तु अपने ऊपर

अनन्त उपकार करने वाले शक राजकुमार की केवल एक इच्छा की पूर्ति करना मैंने अपना धर्म समझा।

विक्रमादित्य—किन्तु तुम जानती हो कि शकों और आर्यों का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? शकों ने आर्यों पर कितने अत्याचार किये हैं ? उन्होंने ब्राह्मणों का वध किया है। और वर्णाश्रम धर्म को जड़-मूल से उखाड़ने की चेष्टा की हैं। क्या शहानुशाही क्षत्रपों के शासन से तुम अपरिचित हो ?

पुष्पिका—नहीं सम्राट्, मुझे शकों के अत्याचार की कथा ज्ञात है, किन्तु शक राजकुमार भूमक बहुत दयावान् है। वह कोमल-हृदय है, वह न्यायी है; अन्यथा वह मुझे मुक्त क्यों करता ? वह मेरे सम्मान की रक्षा क्यों करता ? वह जाति से शक है, किन्तु अपने विश्वास से वह पूर्ण आर्य है। जैन धर्म में उसका पूर्ण विश्वास है। वह हिंसा का विरोधी है, वह शक होकर भी शाकाहारी है।

विक्रमादित्य—तुम इस वक्तव्य से उसे निरपराध सिद्ध नहीं कर सकतीं। यदि आर्य-नारी की रक्षा के कारण उसे क्षमा भी कर दूँ तो कपटपूर्ण अभियोग के लिए उसे दण्डित तो करूँगा ही, और साथ ही तुम्हें भी।

पुष्पिका—सम्राट्, मुझे दण्ड दीजिए, किन्तु मुझ पर उपकार करने वाले क्षत्रप-राजकुमार को क्षमा कर दीजिए।

विक्रमादित्य—वह शक-क्षत्रप होने के कारण ही दण्ड का अधिकारी है। शासन का न्याय शक-क्षत्रप को शक्तिशाली नहीं रहने देगा। शकों ने जिस प्रकार आर्य-संस्कृति को कुचलने की चेष्टा की है उसके लिए उन्हें अनेक परम्पराओं तक प्रायश्चित की अग्नि में जलना होगा। फिर विक्रमादित्य के सामने आर्य-धर्म का विद्रोही संसार का सबसे बड़ा अपराधी है।

पुष्पिका—क्या राजकुमार किसी भाँति भी क्षमा नहीं किया जा सकेगा ?

विक्रमादित्य—मैं उसे क्षमा कर भी सकता हूँ, किन्तु केवल एक बात पर और वह यह कि वह आर्य-धर्म स्वीकार करे और सारे देश में उसका प्रचार करे। क्या वह यह प्रायश्चित स्वीकार करेगा ?

पुष्पिका—सम्राट्, मुझे आशा नहीं है।

विक्रमादित्य—तब वह अवश्य दण्डित होगा। उसने राज-धर्म की अवहेलना की है, उसने राज्य के प्रति षड्यन्त्र किया है, उसने एक झूठे अभियोग से अपनी मुक्ति की कुटिल युक्ति सोची है।

पुष्पिका—(**शिथिल होकर**) सम्राट् की जो इच्छा !

विक्रमादित्य—और सुनो पुष्पिके, तुम्हारे दण्ड की भी व्यवस्था है, और यद्यपि सत्य बोलकर और राज-धर्म की मर्यादा मानकर तुमने अपने अपराध की गुरुता कम कर ली है, फिर भी तुम्हें शक-क्षत्रप के साथ गुप्त अभिसन्धि करने के कारण दो मास के कारावास का दण्ड मिलेगा।

पुष्पिका—सम्राट्, मेरे कारावास का दण्ड बढ़ा दीजिए, किन्तु मेरे उपकारी क्षत्रप को क्षमा कर दीजिए।

विक्रमादित्य—यह असम्भव है। राजनीति स्त्रियों की विनयशीलता से तरल नहीं हुआ करती। (**प्रहरी के साथ भूमक सैनिक-वेष में आता है। उसके हाथ में तलवार है। वह एक सुन्दर शरीर का युवक दृष्टिगत होता है।**)

विक्रमादित्य—(**प्रहरी से**) प्रहरी, तुम यहीं द्वार पर बाहर रहो, तुम्हारी आवश्यकता पड़ेगी।

प्रहरी—(**सिर झुकाकर**) जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

विक्रमादित्य—(**भूमक से**) आओ क्षत्रप-राजकुमार भूमक, मैं तुम्हारी गुप्त अभिसन्धि की सब बातें जान चुका हूँ। तुमने राज-मर्यादा का अपमान भी किया है। कपटपूर्ण अभियोग लाकर तुमने न्याय को धोखा देने की चेष्टा भी की है। तुम कुछ और कहना चाहते हो ?

भूमक—जब उज्जयिनी की नारी ने भी मेरे साथ विश्वासघात किया तब मुझे और कुछ नहीं कहना।

विक्रमादित्य—तुम इसे विश्वासघात क्यों कहते हो क्षत्रप ? यदि उसने तुम्हारे पवित्र विश्वास की अवहेलना की होती तो वह निश्चय ही विश्वासघातिनी होती, किन्तु उसने सत्यासत्य का निर्णय करते हुए पवित्र राजधर्म की मर्यादा रखी। क्या इस आचरण के लिए तुम उसकी सराहना नहीं करोगे ?

भूमक—सम्राट्, मैंने स्वयं अपने दल के सैनिकों से उसकी रक्षा की थी। मैं चाहता था कि वह भी आर्य-सम्राट् से मेरी रक्षा करती।

विक्रमादित्य—तो तुम उपकार का प्रतिदान चाहते हो ?

भूमक—नहीं, संकटकाल में केवल आत्म-रक्षा, और कुछ नहीं।

विक्रमादित्य—किन्तु यह आत्म-रक्षा कपटपूर्ण अभियोग से नही हो सकती। तुम द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत होकर आए हो ? **(तलवार हाथ में तोलते हैं।)**

भूमक—मैं प्रस्तुत होकर आया हूँ सम्राट् ! **(तलवार हाथ में सँभालता है।)**

विक्रमादित्य—किन्तु तुम्हें युद्ध-दान नहीं मिलेगा।

भूमक—मैं कारण जानना चाहता हूँ।

विक्रमादित्य—कारण यह है कि स्त्री-वेश धारण कर लेने वाले व्यक्ति मेरे द्वन्द्व के योग्य नहीं रह जाते। मेरे सामने विभावरी का रूप है, मैं उस पर कृपाण नहीं रख सकूँगा। तुम्हारे लिए बधिक का कृपाण हो सकता है, विक्रमादित्य का 'अपराजित' नहीं। तुम तलवार पृथ्वी पर रख दो।

भूमक—किन्तु मैं द्वन्द्व चाहता हूँ।

विक्रमादित्य—**(तीव्र स्वर में)** तुम न्याय-सभा के सामने हो, क्षत्रप !

भूमक—**(लज्जा और क्रोध से तलवार फेंक देता है।)**

विक्रमादित्य—न्याय की आज्ञा-पालन करने के कारण मैं प्रसन्न हुआ। भूमक, तुमने स्त्री-वेश धारण करके राज्य-दृष्टि के प्रति छल किया, झूठा अभियोग लाकर तुमने राज्य-मर्यादा का अपमान किया

इसलिए तुम कठोर दण्ड के पात्र हो। किन्तु भूमक किसी समय तुमने एक आर्य-नारी की प्राण-रक्षा की थी, इस कारण तुम्हें आंशिक रूप से क्षमा भी दी जा सकती है, यदि तुम राज्य के नियम के अनुसार प्रायश्चित करो। तुम्हें प्रायश्चित करना स्वीकार है?

भूमक—मुझे किसी प्रकार का भी प्रायश्चित करना स्वीकार नहीं है।

विक्रमादित्य—फिर झूठे अभियोग के लिए दण्ड निश्चित है।

भूमक—जो आपके समक्ष झूठा अभियोग है वह मेरे समक्ष मेरी राजनीति है।

विक्रमादित्य—किन्तु मैं तुम्हें अपनी राजनीति से दण्ड दे रहा हूं। सम्राट् के साथ कपट करने का दण्ड तुम जानते हो, भूमक?

भूमक—सम्राट्, मैंने कभी जानने की इच्छा नहीं की।

विक्रमादित्य—तो अब जान लो। तुम्हारे दोनों हाथ काट लिये जाएँगे।

पुष्पिका—(**शीघ्रता से घुटने टेककर**) क्षमा सम्राट्, क्षमा!

विक्रमादित्य—उठो पुष्पिके, उठो, तुम पहले से ही दण्डित हो। अब तुम्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं है। (**भूमक से**) और भूमक, तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था मैं इसी समय करूँगा।

(**पुष्पिका उठती है।**)

भूमक—सम्राट्, मैं हर समय प्रस्तुत हूँ।

(**विक्रमादित्य घण्टे पर चोट करते हैं।**)

विक्रमादित्य—भूमक, मुझे दुःख केवल यही है कि तुम्हारे हाथों के न रहने से मैं कभी तुम्हारा युद्ध-कौशल न देख सकूँगा, किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं। हाँ, अपने शेष जीवन में तुम यह प्रयत्न करना कि अगले जन्म में तुम्हारे दोनों हाथ जीवन-भर काम दे सकें।

(**प्रहरी का प्रवेश**)

विक्रमादित्य—(**प्रहरी से**) प्रहरी, वधिक को शीघ्र यहाँ आने की

आज्ञा सुनाओ। आज फिर भगवान् ज्योतिर्लिङ्ग महाकालेश्वर का रक्त से अभिषक होगा।

प्रहरी—(सिर झुकाकर) जो आज्ञा।

विक्रमादित्य—पुष्पिके, अपने उपकारी के प्रति जो कुछ भी श्रद्धा-वाक्य कहना है मेरे सामने ही कह लो। मुझे खेद है कि तुम्हारी क्षमा-प्रार्थना मुझे अस्वीकार करनी पड़ी। किन्तु शासन का न्याय सर्वोपरि है। वह शकों के सम्बन्ध में क्रूर है और अपराधियों के सम्बन्ध में दृढ़। वह तुम्हें अन्याय के समर्थन की आज्ञा नहीं देगा और (**भूमक से**) राजकुमार भूमक, मुझे खेद है कि तुम यहाँ एकाकी आये। यदि तुम्हारे कुछ साथी और होते तो पारस्परिक सहानुभूति में तुम लोगों का दुःख कुछ कम होता।

भूमक—सम्राट्, मुझे अपने दुर्भाग्य की चिन्ता नहीं है।

विक्रमादित्य—ठीक है, तुम्हें सन्तोष होगा। अब हाथों से रहित होने पर तुम कपट करने के पाप से बचे रहोगे।

भूमक—यदि राजनीति ही कपट हो तो मैं उसमें पाप नहीं समझता। फिर भी मैं अपमानित होकर जीवित नहीं रहना चाहता। आप वधिक को आज्ञा दें कि वह हाथों के बदले मेरा सिर काट दे।

विक्रमादित्य—नहीं, आज्ञा नहीं दी जा सकती, विक्रमादित्य द्वन्द्व और रण-स्थल के अतिरिक्त किसी अन्य स्थल पर प्राण-दण्ड नहीं देता। मैं केवल तुम्हारे हाथ काटने की आज्ञा दे सकूँगा। फिर तुम्हारे खण्डित शरीर से मुझे अन्याय रोकने में भी सहायता मिल सकेगी। तुम दण्ड के प्रतीक बनकर इस प्रकार की न्याय-सभा करने के अवसर कम आने दोगे।

(वधिक का प्रवेश। अर्ध-नग्न, भयानक शरीर, कमर में जाँघिया, हाथों में कड़े, बाल खुले हुए, माथे पर त्रिपुण्ड और हाथ में कृपाण। वह प्रणाम करता है।)

विक्रमादित्य—वधिक, तुम्हारे सामने यह शक अपराधी है। न्याय की आज्ञा है कि तुम इसके दोनों हाथ काट दो।

पुष्पिका—(आगे बढ़कर, हाथ जोड़कर) सम्राट्, यदि आप राजकुमार को क्षमा नहीं करते तो मेरे भी दोनों हाथों के काटे जाने की आज्ञा दीजिए। अपने ऊपर उपकार करने वाले को दण्डित होता हुआ देखकर मेरी आत्मा तिरस्कार कर रही है। सम्राट्, मेरी कुछ प्रार्थना है।

विक्रमादित्य—(तीक्ष्ण स्वर में) अपने स्थान पर ही रहो पुष्पिका, तुम्हारा न्याय हो चुका है। न्याय के आदेश में परिवर्तन के लिए कोई स्थान नहीं है, जब तक कि अपराधी राज-विधान के अनुसार प्रायश्चित न करे। मैं अपनी ओर से एक बार फिर अवसर दे सकता हूँ। क्षत्रप, तुम प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो?

भूमक—(दृढ़ता से) नहीं।

विक्रमादित्य—(वधिक से) वधिक, तुम अपना कार्य करो।

वधिक—(भूमक से) अपराधी घुटने टेको।

(भूमक घुटने टेकता है।)

वधिक—दोनों हाथ जोड़कर आगे बढ़ाओ।

(भूमक दोनों हाथ जोड़कर आगे बढ़ाता है।)

विक्रमादित्य—शक राजकुमार, इन हाथों से एक बार भगवान् ज्योतिर्लिङ्ग महाकालेश्वर को प्रणाम करो, फिर प्रणाम करने वाले ये हाथ नहीं रहेंगे।

भूमक—सम्राट्, क्षमा करें, मैंने तीर्थंकरों और शक-सम्राटों के अतिरिक्त किसी को प्रणाम नहीं किया।

विक्रमादित्य—अब उन्हें दूसरे जन्म में प्रणाम करना। राजकुमार, अब तुम प्रस्तुत हो?

भूमक—मैं प्रस्तुत हूँ, सम्राट्!

विक्रमादित्य—(वधिक से) वधिक, अब तुम भी प्रस्तुत हो जाओ।

वधिक—जो आज्ञा। (वह अपना कृपाण उठाता है।)

विक्रमादित्य—तुम और कुछ कहना चाहते हो, क्षत्रप?

भूमक—कुछ नहीं सम्राट्। मैं केवल यही दुःख लेकर संसार में रहूँगा

कि विक्रमादित्य सम्राट् माँगने पर भी मुझे मृत्यु नहीं दे सके। मुझे एक दुःख और रहेगा कि अब हाथों के न रहने से मैं अपने सम्मान की रक्षा भी न कर सकूँगा।

पुष्पिका—(**गहरी साँस लेकर**) और समय पड़ने पर इन हाथों से किसी नारी की रक्षा भी नहीं हो सकेगी।

विक्रमादित्य—दो दुःख तुम्हारे और एक दुःख पुष्पिका का, तीन दुःख हुए। मैं इसके लिए आर्य-धर्म के तीन स्मारक बनवाऊँगा। और कुछ? (**कुछ रुककर**) कुछ नहीं? (**वधिक से**) वधिक, महाकालेश्वर का अभिषेक हो।

[**वधिक तलवार उठाकर वार करता है। पुष्पिका शीघ्रता से आगे बढ़ जाती है और उसके माथे में चोट लग जाती है। वह गिर पड़ती है। विक्रमादित्य शीघ्रता से बढ़कर उसके समीप पहुँचते हैं।**]

विक्रमादित्य—(**वधिक से**) वधिक, ठहरो। (**वधिक सहमकर पीछे हट जाता है। गहरी साँस लेकर पुष्पिका से**) पुष्पिके, यह तुमने क्या किया?

पुष्पिका—(**टूटे स्वर से**) अपने उपकारी की रक्षा, सम्राट्!

भूमक—(**उठकर**) सम्राट्, मैं प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

विक्रमादित्य—(**उठकर**) क्षत्रप, यदि तुम पहले ही प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो जाते तो पुष्पिका को चोट न लगती।

भूमक—सम्राट्, मुझे आपके शासन में उज्जयिनी की नारी की महानता ज्ञात नहीं थी। मैं नहीं जानता था कि आपने अपने शासन का आदर्श इतना ऊँचा रखा है, जिसमें नारियाँ उपकार का बदला देने के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग तक कर सकती हैं।

विक्रमादित्य—तो तुम प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो?

भूमक—हाँ सम्राट्, मैं प्रस्तुत हूँ।

विक्रमादित्य—(**वधिक से**) वधिक तुम जा सकते हो।

(**वधिक का सिर झुकाकर प्रस्थान।**)

विक्रमादित्य—(**भूमक से**) भूमक, मुझे प्रसन्नता है कि तुम प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो। प्रायश्चित की पहली व्यवस्था यह है कि तुम पुष्पिका को अपनी बहन समझकर—यदि वह जीवित रही तो—उसकी शुश्रुषा का भार लोगे ?

भूमक—(**सिर झुकाकर**) स्वीकार है सम्राट् ! (**पुष्पिका के सिर को अपने घुटने पर रखता है।**)

विक्रमादित्य—प्रायश्चित की दूसरी व्यवस्था यह है कि तुम जैन-धर्म को छोड़कर आर्य-धर्म का पालन करोगे और उसका प्रचार सौराष्ट्र के समीपवर्ती प्रदेश में करोगे। स्वीकार है ?

भूमक—(**सिर झुकाकर**) स्वीकार है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—गौ-ब्राह्मण की रक्षा करने का पुनीत कर्त्तव्य तुम्हारे जीवन का प्रथम कर्त्तव्य होगा। स्वीकार है ?

भूमक—(**सिर झुकाकर**) मैं स्वीकार करता हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तो आज अपनी सारी प्रतिज्ञाओं को भगवान् महाकालेश्वर के मन्दिर में अभिमन्त्रित करो।

भूमक—मुझे स्वीकार है, सम्राट् ! पुष्पिका के महान् उत्सर्ग में आपके चरित्र-बल की श्रेष्ठता छिपी हुई है। सुगन्धित पुष्प का विकास वसन्त ही में होता है। आपके शासन में मैं अनुभव करता हूँ कि जैसे आर्य-धर्म का सूर्य अपनी उज्ज्वल और प्रखर रश्मियों से भारतीय गगन-मण्डल में चमक रहा है और उसके सामने छल का कोई बादल नहीं आ सकता। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देख लिया कि आपके राज्य में कोई षड्यन्त्र सफल नहीं हो सकता। आज मुझे गौरव है कि मैं आपका सेवक और आर्य-धर्म का सच्चा अनुयायी हूँ।

विक्रमादित्य—(**हाथ उठाकर**) तब तुम मुक्त हो क्षत्रप राजकुमार !

पुष्पिका—सम्राट् (**टूटे स्वर में**) मेरी···प्रार्थना···पूरी···हुई···मैं···कृतज्ञ···हूँ। औ···और···मेरी···एक···प्रार्थना···और···है। आज···की···अमर···घटना···की···स्मृति···में···आपका···संवत्···

प्रचलित···हो ।

भूमक—हाँ सम्राट्, अभी तक के मान्य युधिष्ठिर-संवत् के स्थान पर विक्रम-संवत् का प्रचलन हो, यह मेरी भी प्रार्थना है।

विक्रमादित्य—(**हाथ उठाकर**) तथास्तु ! पुष्पिके, तुम आदर्श नारी हो, तुम्हारी शुश्रूषा में राज्य की विशेष सहायता रहेगी। तुम्हारे आदर्श आचरण के कारण तुम्हारा अपराध भी क्षमा कर दिया गया।

भूमक और पुष्पिका—(**सम्मिलित स्वर में**) सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो !

(**सम्राट् विक्रमादित्य अभय-मुद्रा में हाथ उठाते हैं।**)

(**परदा गिर जाता है।**)

अधिकार का रक्षक

(एक व्यंग)

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क

पात्र

मि० सेठ—एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार

रामलखन—उनका नौकर

भगवती—रसोइया

कॉलेज के दो लड़के, सम्पादक, श्रीमती सेठ, नन्हा बलराम

समय—आठ बजे सुबह

स्थान—मि० सेठ के मकान का ड्राइंग रूम

अधिकार का रक्षक

[बाईं ओर, दीवार के साथ एक बड़ी मेज़ लगी हुई है, जिस पर एक रैंक में करीने से पुस्तकें चुनी हैं। दाएँ-बाएँ कोनों में लोहे की दो ट्रे रखी हैं, जिनमें एक में आवश्यक काग़ज़-पत्र आदि और दूसरी में समाचार-पत्र रखे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्ग गज़ का चौकोर टुकड़ा रखा है जिसके नीचे काग़ज़ दबे हुए हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैंक के मध्य में एक सुन्दर कलमदान रखा हुआ है और एक-दो कलम शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज़ के इस ओर एक गद्देदार कुरसी है, जिसके पास ही दाईं ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चोंगा रखा हुआ है। स्टूल के दाईं ओर एक तख्तपोश है, जिसमें सफ़ाई से बिस्तर बिछा हुआ है। कुरसी और तख्तपोश के बीच स्टूल इस तरह रखा हुआ है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चोंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख्तपोश के पास आरामकुरसी पड़ी हुई है। बाईं दीवार के साथ एक कौच का सेट है। बाईं दीवार में दो खिड़कियां हैं जिनके मध्य केलेण्डर लटक रहा है। दाईं ओर दीवार में एक दरवाज़ा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

परदा उठाने पर मि० सेठ कुरसी पर बैठे कोई समाचार-पत्र देखते नज़र आते हैं।]

(टेलीफोन की घण्टी बजती है।)

(मि० सेठ समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं।)

मि० सेठ—हलो !

(ज़रा और ऊँचे) हलो !

हाँ-हाँ, मैं बोल रहा हूँ। धनश्यामदास ? आप···

अच्छा-अच्छा रलारामजी मन्त्री हरिजन सभा हैं। नमस्ते। **(ज़रा हँसते हैं।)** सुनाइए महाराज, कल के जलसे की कैसी रही ?

अच्छा, आपके भाषण के बाद हवा पलट गई। सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने कों तैयार हो गए ?

ठीक-ठीक ! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने ! वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीड़ितों, पद-दलितों और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिए, हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है ! उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी, ऊल-जलूल और दक़ियानूसी है ! उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित दबाव में रखकर उन्हें कितना डरपोक और भीरु बनाया जाता है ! उन्हें···

(छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।)

बलराम—बाबूजी, बाबूजी, हमें मेले···

मि० सेठ—(पूर्ववत् टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज़ तनिक ऊँची हो जाती है।) हाँ-हाँ, मैं कह रहा हूँ कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य···

बलराम—(और समीप आकर कुरते का छोर पकड़कर) बाबूजी···

मि० सेठ—(चोंगे से मुंह हटाकर, क्रोध से) ठहर-ठहर-कमबख्त ! देखता नहीं मैं टेलीफोन पर बात···

(बच्चा रोने लगता है।)

मि० सेठ—(टेलीफोन पर) मैं आपसे अभी एक सेकंड में बात करता हूँ, इधर ज़रा शोर हो रहा है।

(चोंगा खट से मेज़ पर रख देते हैं।)

(बच्चे से) चल, निकल यहाँ से। सूअर ! कम्बख्त !

(कान पकड़कर उसे दरवाज़े की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ

बैठ जाता है ।)

(नौकर को आवाज़ देते हैं) ओ रामलखन, ओ रामलखन !

रामलखन—(वाहर से) आये रहे वाबूजी !

(भागता हुआ भीतर आता है । साँस फूली हुई है ।)

जी वावूजी !

(मि० सेठ नौकर को पीटते हैं ।)

मि० सेठ—सूअर ! हरामखोर ! पाजी ! क्यों इसे इधर आने दिया ? क्यों इधर आने दिया इसे ?

रामलखन—अब बाबू काहे मारत हो ? लिये तो जात रहे ।

(लड़के का बाजू थामकर उसे बाहर ले जाता है ।)

मि० सेठ—और सुनो, किसी को इधर मत आने देना । कोई वाहर से आए तो पहले आकर खवर देना । समझे । नहीं तो मारकर खाल उधेड़ दूंगा ।

(नौकर और लड़के को बाहर निकालकर ज़ोर से किवाड़ लगा देते हैं ।)

हुँ, अहमक ! मुफ्त में इतना समय नष्ट कर दिया ।

(चोंगा उठाते हैं ।)

(तनिक कर्कश स्वर में) हलो···(आवाज़ में ज़रा विनम्रता लाकर) अच्छा, अच्छा, आप अभी हैं···(स्वर को कुछ संयत करके) तो मैं कह रहा था कि प्रान्त में मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन किया जो घरों और स्कूलों में छोटे-छोटे बच्चों पर तोड़ा जाता है; और फिर वह मैं ही हूँ जिसने पाठशालाओं में शारीरिक दण्ड को तत्काल बन्द कर देने पर जोर दिया । दूसरे घरों में काम करने वाले अत्याचार-पीड़ित भोले-भोले निरीह नौकर हैं, जो क्रूर मालिकों के जुल्म का शिकार वनते हैं । इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने हेतु मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की । इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया, उनके स्वत्वों की, उनके अधि-

कारों की रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया है और और भी यदि परमात्मा ने चाहा और मैं धारा-सभा में गया तो...

(दरवाजा खुलता है।)

रामलखन—(दरवाज़े से झाँककर) बाबूजी जमादारिन...

मि० सेठ—(टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ भी हरिजनों की सेवा करूँगा। आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन—(जरा अन्दर आकर) बाबूजी...

मि० सेठ—(क्रोध से) ठहर पाजी, **(टेलीफोन में)** नहीं-नहीं, मैं नौकर को कह रहा था। **(खिसियाने-से होकर हँसते हैं)** हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मैं असेम्बली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक में प्रोपेगेंडा करें।

हैं...क्या ?...अच्छा...अच्छा...मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा। क्या करूँ अवकाश नहीं मिलता; हि-हि...हिं-हि... **(हँसते हैं)** अच्छा नमस्कार है।

(टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं।)

(नौकर से) तुम्हें तो कहा था, इधर मत आना।

रामलखन—आप ई तो कहे कि कऊ आए तो इत्तला कर दई, मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी माँगत...

मि० सेठ—(गुस्से से) कह दो उससे, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भंगिन—(दरवाज़े के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज, दूधों नहाओ, पूतों फलो। दो महीने हो गए हैं।

मि० सेठ—कह जो दिया। जाओ, अब समय नहीं।

(भगवती प्रवेश करता है।)

भगवती—जयरामजी की बाबूजी !

मि० सेठ—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो ।

मि० सेठ—(लापरवाही से) तुम देखते हो, आजकल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता । कुछ दिन ठहर जाओ ।

भगवती—बाबूजी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते । आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए ।

मि० सेठ—(ज़रा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ । यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब-हिसाब चिल्ला रहे हो ।

भगवती—जब आपकी नौकरी करते हैं तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जाएँ ।

मि० सेठ—अभी चार दिन हुए जो दो रुपये ले गए थे ।

भगवती—वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग में बनिये की भेंट हो गया था. दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है ।

मि० सेठ—(जेब से रुपया निकालकर फर्श पर फेंकते हुए) तो लो, अभी एक रुपया ले जाओ ।

भगवती—नहीं बाबूजी एक-एक नहीं । आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए । वेतन मिले तीन महीने हो गए हैं । एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आखिर बीवी-बच्चे हैं, उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए । आप एक दिन के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने···

मि० सेठ—(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो ? कह जो दिया, अभी यही ले जाओ, बाकी फिर ले जाना ।

भगवती—हम तो आज ही सब लेकर जायेंगे ।

मि० सेठ—(उठकर, और भी क्रोध से) क्या कहा ? आज ही लोगे, अभी लोगे ? जा, नहीं देते, एक कौड़ी भी नहीं देते । निकल जा यहाँ से । जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे । पाजी, हरामखोर, सूअर ! आज तक सब्जी में, दाल में, सौदा-सुलफ में, यहाँ तक कि बाज़ार से आने वाली हर चीज़ में पैसे खाता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यों

अकड़ता है ? जा निकल जा । जाकर अदालत में मामला चला दे । चोरी के अपराध में छः महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नहीं ।

भगवती—सच है बाबूजी, गरीब लाख ईमानदार हो तो चोर है, डाकू है और अमीर यदि आँखों में धूल झोंककर हजारों पर हाथ साफ़ कर जाए, चन्दे के नाम पर सहस्रों···

मि० सेठ—(**क्रोध से पागल होकर**) तू जायेगा या नहीं, (**नौकर को आवाज देते हैं**) रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बाबूजी, जी बाबूजी !

(**भागता हुआ भीतर आता है ।**)

मि० सेठ—इसको बाहर निकाल दो ।

रामलखन—(**भगवती के बलिष्ठ, चौड़े-चकले शरीर को नख से शिख तक देखकर**) ई को बाहर निकारि दें, ई हमसों कब निकस, ई तो हमें निकारि दे···

मि० सेठ—(**बाजू से रामलखन को परे हटाकर**) हट तुझसे क्या होगा !

(**भगवती को पकड़कर पीटते हुए बाहर निकलते हैं ।**)

निकलो, निकलो !

भगवती—मार लें और मार लें । हमारे चार पैसे रखकर आप लक्षाधीश न हो जायेंगे !

(**मि० सेठ उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं ।**)

(**रामलखन से**) तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो ? निकलो ।

(**रामलखन डरकर निकल जाता है ।**)

मि० सेठ—(**तख्तपोश पर लेटते हुए**) मूर्ख, नामाकूल !

(**फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज देते हैं ।**)

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—(**बाहर से**) आए रहे बाबूजी !

(प्रवेश करता है।)

मि० सेठ—अखबार अभी आया है कि नहीं ?

रामलखन—आ गया बाबूजी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाये देत।

मि० सेठ—पहले इधर क्यों नहीं लाया ? कितनी बार तुझे कहा अखबार पहले इधर लाया कर। ला भागकर।

(रामलखन भागता हुआ जाता है।)

मि० सेठ—(घूमते हुए अपने-आप) मेरा वक्तव्य कितना ज़ोरदार था ! छात्रों में हलचल मच गई होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जाएगी।

(टेलीफोन की घण्टी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं।)

(टेलीफोन पर, धीरे से) हलो !

(ज़रा ऊँचे) हलो !...कौन साहब ?...मन्त्री हौज़री यूनियन ! अच्छा-अच्छा, नमस्कार, नमस्कार ! सुनाइए, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ?

क्या ?...सब मेरे हक में वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।

इस ओर से आप बिल्कुल निश्चिन्त रहें। मैं उन आदमियों में से नहीं, जो कहते हैं कुछ और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ, वही कहता हूँ। आपने मेरा इलैक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव-सम्बन्धी घोषणा-पत्र) नहीं पढ़ा ? मैं असेम्बली में जाते ही मज़दूरों की अवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा; उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में विशेष बिल धारा-सभा में पेश करूँगा।

क्या ? हाँ...हाँ, इस ओर से भी मैं लापरवाह नहीं। मैं जानता हूँ इस सिलसिले में श्रमजीवियों को किस-किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजीपति गरीब मज़दूरों का कई-कई महीनों का वेतन रोक-कर उन्हें भूखों मरने पर विवश कर देते हैं। स्वयं मोटरों में सैर करते

हैं, शानदार होटलों में खाना खाते हैं और जब ये गरीब रात-दिन परिश्रम करने के बाद, लोहू-पानी एक कर देने के बाद, अपनी मज़दूरी माँगते हैं तब उन्हें हाथ तंग होने का, कारोबार में हानि होने का अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बना टाल देते हैं। मैं असेम्बली में जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जाएँ और जिन लोगों ने गरीब श्रमिकों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रखे हों उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हें दण्ड दिया जाए।

हाँ, आपकी यह माँग भी सोलह आने ठीक है। मैं असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घण्टे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना चाहिए। तेरह-तेरह घण्टे की ड्यूटी ! भला काम की कुछ हद भी है।

(धीरे-धीरे दरवाज़ा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं।)

(पतले-दुबले-से; आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गए हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है।)

(धीरे से दरवाज़ा बन्द करके खड़े रहते हैं।)

मि० सेठ—(**संपादक से**) आइए बैठिए (**टेलीफोन पर**) यह हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो सन्ध्या को आपकी सभा हो रही है। मैं आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार !

(चोंगा रख देते हैं।)

(**सम्पादक से**) बैठ जाइए, आप खड़े क्यों हैं ?

सम्पादक—नहीं, कोई बात नहीं।

(तकल्लुफ के साथ कौच पर बैठते हैं। रामलखन अखबार लिये आता है।)

रामलखन—बड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरदस्ती लेई

आये।

मि० सेठ—(**समाचार-पत्र लेकर**) जा-जा, बाहर बैठ !

(**कुरसी को तख्तपोश के पास सरकाकर उस पर बैठते हैं, पाँव तख्तपोश पर टिका लेते और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।**)

सम्पादक—मैं…मैं…

मि० सेठ—(**अखबार बन्द करके**) हाँ, हाँ, पहले आप ही फरमाइए।

सम्पादक—(**होंठों पर ज़बान फेरते हुए**) बात यह है कि मेरी… मेरा मतलब है…कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही हैं।

मि० सेठ—आपको डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए था। कहिए डॉक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ ?

सम्पादक—नहीं, यह बात नहीं, (**थूक निगलकर**) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ सहन नहीं कर सकतीं। आप जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है, बल्कि आजकल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छः-सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं !

मि० सेठ—तो आप इतना न बैठा करें बस, जल्दी काम निबटा दिया…

सम्पादक—मैं तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निबट सकता है ? एक मैं हूँ, और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं, न ठीक लेख लिख सकते हैं। और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर शायद काम जल्द खतम हो जाए, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़…

मि० सेठ—हाँ, हाँ, समाचार तो न रहना चाहिए।

सम्पादक—और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते-करते डेढ़ बज जाता है। अब

आप ही बताइए पहले कैसे जा सकता हूँ।

मि० सेठ—(**बेज़ारी से**) तो आखिर आप क्या चाहते हैं ?

सम्पादक—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है, जिससे…

मि० सेठ—मैं आपसे पहले भी कह चुका हूँ, यह असम्भव है, बिलकुल असम्भव है। अखबार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा; इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है ? अगले महीने पाँच रुपये मैं आपके बढ़ा दूँगा।

सम्पादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घण्टे काम कर सकती हैं ?

मि० सेठ—कैसी मूर्खों की बातें करते हो जी ? छः महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहें तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं, दस आदमी मिल जाएँगे, लेकिन…

(रामलखन भीतर आता है।)

रामलखन—बाहर द्वि लड़िका आपसे मिलना चाहत रहन।

मि० सेठ—कौन हैं ?

रामलखन—कोई सकटड़ी कहे रहन…

मि० सेठ—जाओ, बुला लाओ। (**सम्पादक से**) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है उसका कॉलेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक—(**मुँह फुलाए हुए**) अवश्य पड़ा होगा।

मि० सेठ—मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं, मैंने उन सबका समर्थन किया है।

(दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा

रखी है, दूसरे के गले में खुले कालर की कमीज है।)

दोनों—नमस्ते !

मि० सेठ—नमस्ते !

(दोनों कौच पर बैठते हैं।)

मि० सेठ—कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

खुले कालर वाला--हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

मि० सेठ—आपने उसे कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का--छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि० सेठ--आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं ?

वही लड़का--कल तक तो कुछ न पूछिए, लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गए हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी तरफ था।

मि० सेठ-- **(प्रसन्नता से)** और मैंने गलत ही क्या लिखा है ! जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे ? युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफॉर्म से खौफ न खाए, सुधारों से कन्नी न कतराए।

वही लड़का--हम अपने कॉलेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे, परन्तु कॉलेज के सर्वेसर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

मि० सेठ—आपको प्रोटेस्ट **(विरोध)** करना चाहिए था।

वही लड़का--हमने हड़ताल कर दी है।

मि० सेठ—आपने क्या मांगें पेश की हैं ?

वही लड़का--हम वर्तमान प्रिंसिपल को नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है; कोई छींके तो जुर-माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है; छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमानजनक है।

मि० सेठ—(**कुछ उत्साहहीन होकर**) तो आप क्या चाहते हैं ?

दोनों—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

मि० सेठ—(**गिरी हुई आवाज़ में**) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक रीति प्रयोग में लाते; प्रबन्धकों से मिल-जुलकर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—हम सब-कुछ करके देख चुके हैं।

मि० सेठ—हूँ !

टाई वाला लड़का—बात यह है जनाब, कि छात्र कई वर्ष से वर्तमान प्रिंसिपल से असन्तोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवाह न की। कई बार आवेदन-पत्र कॉलिज की प्रबन्धक-कमेटी के पास भेजे गए, पर कमेटी के कानों पर जूँ तक भी नहीं रेंगी। हारकर हमने हड़ताल कर दी है। पर कठिनाई यह है कि कमेटी काफी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराए जा रहे हैं और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है, इसलिए आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

मि० सेठ—(**अन्यमनस्कता से**) मैं आपका सेवक हूँ। यह हमारे सम्पादक हैं, आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। यह जितना उचित समझेंगे छाप देंगे।

दोनों—(**उठते हुए**) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादकजी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि० सेठ और सम्पादक—नमस्कार।

(**दोनों का प्रस्थान।**)

मि० सेठ—(**सम्पादक से**) यदि कल ये आयें तो इनका बयान हरगिज न छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।

सम्पादक—(**मुँह फुलाये हुए**) बहुत अच्छा।

मि० सेठ—आप घबराएँ नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफत आ गई ? जब मैंने अखबार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे काम किया करता था। यह महीना आप किसी-न-किसी तरह निकालिए; चुनाव हो लें, फिर कोई प्रबन्ध कर दूंगा।

सम्पादक—**(दीर्घ निःश्वास छोड़कर)** बहुत अच्छा।

(मि० सेठ समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाज़ू थामे श्रीमती सेठ बगूले की भाँति प्रवेश करती हैं।)

श्रीमती सेठ—मैं कहती हूँ, आप बच्चों से प्यार करना भी सीखेंगे ? जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते नजर आते हो, जैसे बच्चे अपने न हों पराये हों। भला, आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे ? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

मि० सेठ (पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने का सलीका भी आयेगा ? जाओ, इस समय मेरे पास समय नहीं है।

श्रीमती सेठ—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है ? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल आता है ! इतनी देर से ढूंढ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसियों आवाजें दीं, घर का कोना-कोना छान मारा। आखिर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गई थी ?

मि० सेठ—**(क्रोध से अखबार को तख्तपोश पर पटककर)** क्या बके जा रही हो ? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभालकर रखा करो। आ जाते हैं सुबह-सुबह दिमाग चाटने के लिए।

(श्रीमती सेठ बच्चे को दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।)

श्रीमती सेठ—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर। यह बाप नहीं, दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके

सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास कराएँगे, उनकी उन्नति के भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूल-कर भी प्यार का एक शब्द ज़बान पर न लाएँगे।

(बच्चे के और चपत लगाती है।)

—तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती; **(आवाज़ ऊँची होते-होते रोने की हद को पहुंचती है।)** स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ—मार खाने ? कान तुड़वाने ?

मि० सेठ—(क्रोध से पागल होकर, पत्नी को ढकेलते हुए) मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो, यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया ? अभी कोई आ जाए तो क्या हो। कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अन्दर जाकर बैठा करो।

(श्रीमती सेठ तुनककर खड़ी हो जाती हैं।)

श्रीमती सेठ—आप कभी घर के अन्दर आये भी ? आपके लिए तो घर के अन्दर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिरहाने रखकर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालों का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें ?

मि० सेठ—कौनसा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गई ? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ—सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिए। कहें तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूं।

(उन्मादियों की भाँति बच्चे का सिर पकड़कर तख्तपोश पर मारती हैं। मि० सेठ तड़ातड़ पीटते हैं।)

मि० सेठ—मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ

यहाँ से। मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बक-बक से तंग आकर में इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है। क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

श्रीमती सेठ—(**रोती हुई**) आप क्यों चले जाएँ, हम ही चले जाएँगे।

(**भर्रायी हुई आवाज़ में नौकर को आवाज़ देती है।**)

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बीबीजी !

(**प्रवेश करता है।**)

श्रीमती सेठ—जाओ, जाकर ताँगा ले आओ। मैं मायके जाऊँगी। (**तेजी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाज़ा ज़ोर से बन्द होता है।**)

मि० सेठ—बेवकूफ !

(**आरामकुर्सी पर बैठकर टाँगें तख्तपोश पर रख देते हैं और पीछे को लेटकर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलीफोन की घण्टी बजती है।**)

मि० सेठ—(**वहीं से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में**) हलो! हलो! •••नहीं, यह ३८१२ है, ग़लत नम्बर है।

(**बेजारी से चोंगा रख देते हैं।**)

ईडियट्स !

(**टेलीफोन की घण्टी फिर बजती है।**)

(**और भी कर्कश स्वर में**) हलो! हलो!

(कौन? श्रीमती सरला देवी! (**उठकर बैठते हैं। चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाता है।**) माफ़ कीजिएगा, मैं ज़रा परेशान हूँ। सुनाइए, तबियत तो ठीक है?

(**दीर्घ निःश्वास छोड़कर**) मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए, आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है? मैं भी कुछ आशा

रखूँ या नहीं ?

मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूँ। आप विश्वास रखें, मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझसे बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नज़र न आएगा...

(परदा गिरता है।)

गिरती दीवारें

(१९वीं सदी का एक चित्र)

श्री उदयशंकर भट्ट

पात्र

राव साहब—१९वीं सदी के एक रूढ़िधारी कुल का स्वामी—कुलपति

विजयमोहन—राव साहब का बड़ा लड़का

प्रद्युम्नकुमार—राव साहब का छोटा लड़का

मुन्शी—राव साहब का पुराना मुन्शी

रामनारायण—राव साहब का नौकर

कान्ता—प्रद्युम्नकुमार की लड़की

मिस साहब—कान्ता की 'ईसाई' अध्यापिका, रामनारायण की लड़की, अन्य नौकर आदि

गिरती दीवारें

[एक पुराने रईस का कमरा—देशी ढंग से सजा हुआ। ज़मीन पर एक मोटा गद्दा बिछा है, जो आधे से अधिक कमरे को घेरे हुए है। दरवाज़े के पास किनारे-किनारे कुरसियाँ रखी हुई हैं—बेंत की बनी हुईं। गद्दे पर गाव-तकियों की कतार ठीक ढंग से रखी है। एक तरफ़ कोने में एक मेज़ पर ताँबे का लोटा रखा है।

दीवार पर विभिन्न प्रकार के चित्र लगे हैं। एक ओर उस वंश के पूर्वजों के चित्र लगे हैं। प्रायः प्रत्येक चित्र में उस हिस्से के पूर्वज चोगा पहने हुए हैं। कान को ढके हुए एक विशेष नोक वाला साफ़ा है। ऐसी नोक जन-साधारण अपनी पगड़ी में नहीं रखते। यही इस परिवार की विशेषता है—चोगा और पगड़ी।

कमरे के वातावरण को देखकर ज्ञात होता है कि रूढ़ियों को पालना इस कुल का परम लक्ष्य है। कोई ऐसी बात, जो अब तक नहीं हुई, इस घर में नहीं हो सकती। जिस ढंग से बात करने का नियम है उसी ढंग से बात करना सिखाया जाता है। प्रत्येक लड़के को यही सीखना होता है कि इस कुल की परम्परा क्या है। परम्परा के विरुद्ध कुछ नहीं होता।

कुलपति अस्सी-पिचासी वर्ष के व्यक्ति हैं। उनका शरीर शिथिल है। अपने पूर्वजों की पोशाक में कालीन पर जा बैठते हैं। उनकी आज्ञा है, कोई भी व्यक्ति उस कमरे में जोर से न बोले; बिलकुल धीरे अदब-कायदे से आये। जूते दरवाज़े के पास उतारे। यदि जूते न उतारने हों तो दीवार के किनारे लगी हुई कुरसियों पर बैठे।

यही उस कुल तथा कमरे की रक्षा का उपाय है। उस कमरे में

स्त्रियाँ नहीं आ सकतीं; छोटी-छोटी लड़कियाँ भी नहीं। उनके लिए उसके पीछे बड़े कमरे में उठने-बैठने का स्थान निश्चित है।

मुख्य कमरे के साथ एक छोटा कमरा है जिसमें कुलपति का पुराना मुन्शी बैठा रहता है। उसके सामने रजिस्टर-बहियाँ एक डेस्क पर फैली हैं। वह छोटा कमरा उस कमरे से दिखाई देता है। केवल मान-रक्षा के लिए एक परदा डाल दिया गया है। आवश्यकता होने पर परदा हटा दिया जाता है। पर ऐसा बहुत कम होता है—प्रायः उस समय, जब बड़े आदमी घर पर नहीं रहते। एक बात और, उस घर का कोई आदमी पैदल नहीं चल सकता। उसे गाड़ी पर जाना होगा।

कहा जाता है उनके पूर्वज किसी राजा के यहाँ एक बड़े पद पर नियुक्त थे। महाराजा उनको बहुत मानते थे, यहाँ तक कि महल और अपने घर के सिवा वे कभी पैदल नहीं चले। सदा बन्द गाड़ी में चलते। नगर के बहुत से व्यक्तियों ने उनको नहीं देखा था।

तब से कुल का बड़ा लड़का, जो घर का मालिक होता था, इस नियम का पालन करता था। फिर भी पैदल चलना, बिना चोगे-पगड़ी के दीवानखाने में आना असम्भव समझा जाता था। वृद्ध का एक लड़का था जो उसी नियम का पालन करता था। गृह-स्वामी कभी-कभी उस कमरे में आते हैं।

कमरे में उत्तर की ओर क्रमशः तीन आसन (कालीन) गाव-तकियों के साथ बिछे हैं। उन पर क्रमशः वंश के पूर्वज बैठा करते थे। प्रत्येक आसन पर उन पूर्वजों के चोगे, पगड़ी और खड़ाऊँ रखी हैं। खड़ाऊँ पर फूल चढ़े हैं। चौथा आसन ठीक इसी प्रकार का गृह-पति का है। उसके साथ ही लड़के का आसन है। गृह-पति के आसन पर तीन गाव-तकिये और लड़के के आसन पर एक नक्काशीदार डेस्क है।

उस कमरे में घुसने का कायदा यह है कि सिवा गृह-पति के जो भी व्यक्ति उस कमरे में आये उसे तीन बार झुककर सलाम करना पड़ता है। गृह-पति के आसन के पास एक गोल कटोरा और एक छोटा-सा डंडा रखा

है। स्वामी जब किसी को बुलाना चाहते हैं तो कटोरे को डण्डे से बजाते हैं। इस समय कमरा खाली है। एक नौकर है, जो कमरे की धूल झाड़ रहा है। वह प्रत्येक आसन के पास जाकर तीन बार झुककर सलाम करता है, फिर सब चीज़ों को साफ़ करता है। साफ़ करते हुए कभी-कभी सीटी बजाता है, बोलता नहीं। एकाएक नौकर की लड़की रोती हुई दौड़ी आती है।]

लड़की—(ज़ोर से) काका, काका, ओइ काका !

नौकर—(डर से मुँह पर उँगली रखकर) चुप !

लड़की—काका, भैया चौंतरे से गिर पड़ा। काका, उसके खून निकल आया। अम्मा बुला रही है, चलो जल्दी।

नौकर—(बहुत धीरे से) तू जा, मैं आया। राँड कहीं की, चिल्ला रही है। जा...।

लड़की—चलो न काका, चलो।

नौकर—जा... (उसी स्वर में पास जाकर कमरे से बाहर कर देता है। लड़की रोती-रोती चली जाती है।)

(सहसा पीछे से वृद्ध का प्रवेश)

राव साहब—(धीरे से) रामनारायण, यह क्या ? अरे ! तुमने यह क्या किया ? तुम्हें मालूम है आज तक इस कमरे में कोई ज़ोर से नहीं बोला। बड़ा गज़ब हो गया रे ! (स्वयं काँपने-सा लगते हैं।) देखते हो हमारे पूर्वज इसमें रहते हैं। (इतना कहने के साथ प्रत्येक आसन को झुक-झुककर सलाम करते हैं, रामनारायण एकदम स्वामी का आना जानकर काँपने लगता है।)

राव साहब—यह तो बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ ! (बैठकर डण्डे से कटोरा बजाते हैं।) ठहरो ! तुम इस कमरे से नहीं जा सकते, ठहरो ! (घण्टी की आवाज़ से वृद्ध मुन्शी आ जाता है। आने पर वह भी तीन बार झुककर सलाम करता है।) मुन्शी, सुनो मुन्शी, रामनारायण ने मेरे वंश की प्रथा को तोड़ा है। सुना मुन्शी, इसने परम्परा से चली आई

प्रथा को तोड़ डाला है। इस कमरे में मेरे पूर्वज निवास करते हैं। **(इसके साथ प्रत्येक आसन की ओर हाथ उठाते हैं, मानो उन्हें सलाम कर रहे हों।)** मैंने कोई भी व्यक्ति इस कमरे में ज़ोर से बोलते नही देखा—अपने समय में ही नहीं, पिताजी के समय में भी।

मुन्शी—मैं स्वयं पचास वर्ष से रह रहा हूँ, श्रीमान्! मैंने आज तक ऐसा अनर्थ नहीं देखा। यह तो बुरी बात है।

राव साहब—न जाने क्या होने वाला है?

मुन्शी—मुझे रात से ही भयंकर स्वप्न आ रहे हैं। प्रातःकाल यह हो गया।

नौकर—महाराज, क्षमा चाहता हूँ।

राव साहब—कभी ऐसा नहीं हुआ। हम लोग सदा से ही मर्यादा का पालन करते आए हैं। इसको मेरे सामने से हटा दो मुन्शी! ओह वह देखो, ओह वह देखो! पिता, पितामह, प्रपितामह के चोगे क्रोध से हिल रहे हैं। देखते हो न? अरे **(ऊपर देखकर)** सब पूर्वजों के चित्र मेरी ओर क्रोध सें देख रहे हैं। न जाने क्या होने वाला है?

(मुन्शी नौकर को हाथ से पकड़कर बाहर निकाल देता है।)

मुन्शी—अनर्थ यहीं तक नहीं हुआ, रामनारायण की लड़की आ गई।

राव साहब—**(डर के मारे आँखें बन्द कर लेते है, काँपते हुए)** लड़की आ गई? क्या वह लड़की थी मुन्शी? **(बैठकर)** अब क्या होगा? गज़ब हो गया, अनर्थ हो गया। **(चित्रों की ओर झपकती हुई आंखों से देखते हुए)**, मर्यादा भंग हो गई। **(डर के मारे दूसरी बार कटोरा बजा देते हैं।)** हैं, यह क्या हुआ? यह दूसरी बार कटोरा क्यों बज उठा? ऐसा कभी नहीं हुआ। यह अनहोनी बात है, मुन्शी!

मुन्शी—जी, अनहोनी बात है। न जाने क्या होने वाला है? ऐसा तो इस घर में कभी नहीं हुआ।

राव साहब—हाँ, रामनारायण के दण्ड की व्यवस्था करनी होगी। भयंकर बातें हो रही हैं इस घर में। देखो, विजयमोहन **(बड़ा लड़का)**

कहाँ है ? रात में एक भयंकर स्वप्न देखा था मुन्शी ! (**एकदम गाव-तकिये का सहारा लेकर आँखें बन्द कर लेते हैं। चेहरा पीला पड़ जाता है। मुन्शी पंखा करने लगता है। रामनारायण कटोरे की आवाज़ सुन-कर लौट आता है।**) अरे, यह फिर आ गया ! फिर आ गया यह ! इसने मेरे सारे स्वप्न भंग कर दिए। जा दुष्ट, तूने मेरे जीवन का अन्तिम सुख छीन लिया। दूर हो (**राव साहब के लड़के का अस्त-व्यस्त अवस्था में प्रवेश**) अरे ! यह क्या ? चोगा फट कैसे गया, विजय ! गज़ब हो गया ! न जाने क्या होने वाला है !

विजयमोहन—(**खेद के साथ तीन बार पूर्वजों की गद्दी को सलाम करके**) न जाने क्या होने वाला है पिताजी ! आज मुझे जीवन में पहली बार पैदल चलना पड़ा। सब लोग देख रहे थे।

मुन्शी—वंश की प्रतिष्ठा सब नष्ट हो गई, महाराज ! चोगा फट गया।

राव साहब—न जाने क्या होने वाला है ! (**तकिये पर ढुलक जाते हैं। सब लोग सँभालने दौड़ते हैं।**)

विजय—न जाने क्या होने वाला है मुन्शी ! रास्ते में आते-आते मेरी गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से टकरा गई, लोगों ने मुझे देख लिया। ओह, मेरा चोगा फट गया ! बहुत ही अशुभ चिह्न है मुन्शी !

मुन्शी—हाँ बाबू, न जाने क्या होने वाला है ! आज सवेरे राम-नारायण की लड़की कमरे में घुस आई और चिल्लाने लगी।

विजय— हैं ! (**आश्चर्य से**) हैं ! ऐसा क्यों ?

मुन्शी—हाँ बाबू ! लक्षण अच्छे नहीं हैं। इस घर ने सदा मर्यादा का पालन किया है। आज तक किसी ने भी इन पूर्वजों के साथ ज़ोर से बातें नहीं कीं।

विजय—मै बहुत दिन से देख रहा हूँ, इस घर की प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते जा रहे हैं।

राव साहब—(**चैतन्य होकर**) क्या कहा ? प्रतिष्ठा के दिन समाप्त

होते जा रहे हैं। मेरे रहते ही क्या, विजयमोहन ? नहीं, ऐसा न कहो। **(चित्रों को प्रणाम करते हुए)** क्रोध न कीजिए। मैंने भरसक इस घर की मर्यादा की रक्षा की है, तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है। देखो विजय, रामनारायण बिना खाये-पिये मेरे इन पूर्वजों के सामने हाथ जोडे मौन खड़ा रहेगा। समझे ! यही हमारे वंश का दण्ड है, उनके लिए, जो हमारे नियम भंग करते हैं। **(वह चुप रहते हैं।)** मैंने सुना है, देखा नहीं कि दादाजी के समय में कोई सम्बन्धी इस कमरे में घुसकर ज़ोर से चिल्लाया तो उन्होंने उसे सात दिन तक निराहार रहकर खड़े रहने का आदेश दिया था। जब वह मूर्छित हो गया तो उसे खाट से बाँधकर खाट खड़ी कर दी गई थी। वंश-मर्यादा का तोड़ना साधारण बात नहीं, विजय !

विजय—यथार्थ है पिताजी !

मुन्शी—मैं पचास वर्ष से इस घर का अन्न खा रहा हूँ। मैंने कभी नहीं देखा कि किसी ने वंश-मर्यादा में बट्टा लगाया हो, वंश की मर्यादा को धक्का लगाकर उसे पीछे धकेला हो। आखिर यह महाराज के कोषाध्यक्ष का कुल है। मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नहीं निकले। एक बार गाँव के बाहर लोगों ने उनके दर्शनों की इच्छा प्रकट की। तब वे पालकी में बैठकर एक बार गाँव गये, केवल एक बार। वहाँ भी गाँव के लोगों ने उनके दर्शन परदे से किये। उस समय गाँव के लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे भगवान् उतर आए हों। बाहर वे कभी न निकले। अंग्रेजों के दरबार में भी वे जाते रहे। सरकार बहादुर ने उनके मिलने का ख़ास प्रबन्ध किया था। उनसे कह दिया था कि आपके आने की कोई आवश्यकता नहीं है। सरकार आप पर बहुत खुश हैं।

राव साहब—तुम ठीक कहते हो मुन्शी ! यही बात है। तब से इसी तरह मैं भी बाहर आता-जाता रहा हूँ। तीस वर्ष पूर्व जब मैं तीर्थ-यात्रा को गया तब भी पालकी ही में यात्रा की। एक बार चलते-चलते

हमारे पालकी वाले कीचड़ में फँस गए। उब समय गाँव वालों ने ही मेरी सहायता की, मैं पालकी से नहीं उतरा। मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा। मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वंश बहुत ऊँचा है हम लोग साधारण मनुष्यों में से नहीं हैं। हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है। यही कारण है कि इस वंश को आज तक कभी पतन का दुःख नहीं देखना पड़ा।

विजय—ठीक है। मेरी ही समस्या को लो। आज तक उन्हीं नियमों का पालन किया। आज न जाने कहाँ से यह सब हो गया ?

राव साहब—मुझे डर है कि प्रद्युम्नकुमार हमारे इस वंश की रक्षा न कर सकेगा। वह अँग्रेजी पढ़कर तहसीलदार हो गया है। मेरे मना करने पर भी वह राजकुमार कालेज में पढ़ने गया था। हमारे घर में कोई भी घर से बाहर पढ़ने नहीं गया। सदा घर पर ही अध्यापक रखकर पढ़ाया जाता रहा है, केवल इसलिए कि मर्यादा भंग न हो। बाहर का वातावरण तो विष से भरा होता है न, मुन्शी ?

मुन्शी—सच है हुजूर !

राव साहब—न जाने कौन क्या कह दे, क्या परिस्थिति हो ? हम लोग साधारण मनुष्य नहीं हैं, इसलिए अखबार नहीं मँगाते। मैंने आज तक कोई समाचार-पत्र नहीं पढ़ा।

विजय—मैंने भूल से एक-दो बार समाचार-पत्र पढ़ा था। तभी मैंने देखा कि समाचार-पत्रों में बहुत-सी बातें झूठी होती हैं। उदाहरण के लिए यह कि अमुक देश में अकाल पड़ गया, हज़ारों लोग भूखों मर गए। भला यह कोई बात है ! उस जगह का अनाज कहाँ गया ? 'देश में हज़ारों की संख्या में बाल-विधवाएँ हैं—बाल-विधवाएँ !' मैंने नहीं सुना हमारे नगर में दो-चार भी बाल-विधवाएँ हों। इन समाचारों से लाभ क्या है, मैं पूछता हूँ ? एक बार किसी ने लिखा कि आदमी हवाई जहाज़ से उड़ सकता है, भला यह भी विश्वास करने की बात है कि

आदमी उड़ने लगे ? आखिर कौनसी चीज है जिस पर बैठकर आदमी उड़ेगा ?

मुन्शी—गप है, बिलकुल गप है। न जाने क्यों सरकार ने इस पर रोक-थाम नहीं लगाई ?

राव साहब—भाई कलियुग है। कलियुग में जो न सुनने में आए सो थोड़ा है। शिव ! शिव ! न जाने क्या होने वाला है ? सुना है रेल नाम की कोई चीज़ बनी है जो जल्दी ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है। मैं कहता हूँ कि हमें इधर-उधर जाने की आवश्यकता क्या है ? हमारे घर में क्या नहीं है ?

विजय—एक बार एक अँग्रेज़ हमारे घर आ गया। **(पिता से)** जिन दिनों आप तीर्थ-यात्रा को गये थे तब मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। क्या करूँ ? कहाँ बिठाऊँ ? मैंने बाहर दालान में तख्त बिछवाए; गद्दी, कालीन, तकिये ठीक तरह जमा दिए। वहाँ मैं उससे मिला। उसके बाद सारा घर गोबर से पुतवाया, सब कपड़े धुलवाए, गंगाजल छिड़कवाया; तब कहीं जाकर घर पवित्र हुआ। घर की मर्यादा है !

मुन्शी—मैं भी तो था।

राव साहब—मुझे गर्व है तुम-जैसे पुत्र मेरे घर हुए। फिर भी इस कमरे में तो ऐसे अनजान को आने का अधिकार ही नहीं है। अच्छा हुआ उसने हमारे पूर्वजों के चित्र देखने का आग्रह नहीं किया, नहीं तो बड़ी कठिनाई आती।

विजय—उसने कहा था कि हमें अपना घर दिखाओ। मैंने कहा—पिताजी नहीं हैं, मकान की चाबी उनके ही पास है। वह तीर्थ-यात्रा को गये हैं। मैं स्वयं उससे दूर एक ओर तख्त पर बैठा था। जब उसने मिलाने को हाथ बढ़ाया तो मैंने दूर से ही हाथ जोड़ दिए, उसके पास नहीं गया। फिर भी मैंने सब कपड़ों के साथ स्नान किया। क्या करता ? अंग्रेज़ नाराज़ हो जाता तो न जाने क्या होता ?

राव साहब—अब न जाने क्या होने वाला है ! हम लोगों को अपनी

मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए, विजय !

(एक नौकर का प्रवेश)

नौकर—**(तीन बार सबको सलाम करके)** श्रीमान्, छोटे राजा पधार रहे हैं।

राव साहब—प्रद्युम्न ! प्रद्युम्न आया है क्या ? अच्छा !

विजय—आज ठीक तीन वर्ष बाद लौट रहा है, न जाने कैसा होगा ?

मुन्शी—अब अंग्रेज़ों से बात करने में हमें सुविधा होगी।

(प्रद्युम्नकुमार का प्रवेश, चालीस वर्ष की वयस, कोट-पतलून पहने, सिर पर टोप। उसे देखत ही जैसे लोग उसे पहचानते नहीं हैं। आश्चर्य से अभिभूत केवल पिता को ही प्रणाम करता है और किसी को नहीं।)

प्रद्युम्नकुमार—**(केवल हाथ जोड़ता हुआ जूते उतारकर पिता के पास आ जाता है। चोगा और पगड़ी उसके सिर पर नहीं है। यह उन लोगों के लिए आश्चर्य की बात है।)** मेरा तबादला दूसरी जगह हो रहा था, मैंने सोचा चलूँ आपसे मिल लूँ। कहिए, आपका स्वास्थ्य कैसा है ? और भैया तुम ? तुम्हारे भी बाल सफेद हो रहे हैं। आजकल बड़ा काम रहता है—या तो भाग-दौड़ या फिर दफ्तर का ढेरों काम। सिर उठाने को भी समय नहीं मिलता। आप बड़ी हैरानी से मेरी ओर देख रहे हैं ? ओह समझा, शायद इसीलिए कि मैंने टोप नहीं उतारा। ठीक कायदा यह है कि जब अपने से बड़े के सामने जाएँ तो टोप उतार लेना चाहिए। बात यह है कि जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ मुझसे बड़ा कोई नहीं है, इसलिए जब कोई बड़ा अफसर आता है तो मुझे टोप उतार देना होता है। **(टोप उतारकर)** क्यों, आप कोई बोल नहीं रहे हैं, क्याब ात है ? समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप पहन लिया है, अँग्रेज़ बन गया हूँ। क्या किया जाए पिताजी, अँग्रेज़ों के साथ रहकर ऐसा करना पड़ता है। न करूँ तो गाँव वालों पर रोब न जमा पाऊँ। रही, चोगे की बात वह तो वहाँ पहनना तमाशा ही होता है। मैं मज़बूर हूँ।

(राव साहब सिर हिलाते हैं जैसे अभी ढुलककर गिर पड़ेंगे और मुन्शी आँखें फाड़कर देखता है ।)

विजय—तुमने वंश की मर्यादा नष्ट कर दी प्रद्युम्न ! तुम पिता के सामने इस वेश में आये ? आने से पहले तुम्हें दो बार सोच लेना चाहिए था । अच्छा होता यदि तुम न आते ।

प्रद्युम्न—**(आश्चर्य से)** सुनो भैया. मैं क्यों न आता ? यह मेरा घर है, मेरी जायदाद है । मैं क्यों न आता ? मैं रंडियों की-सी पेशवाज़ पहनकर कचहरी नहीं कर सकता, सिर पर व्यर्थ का गट्ठर नहीं रख सकता । समय बदल गया है, हमको भी बदलना चाहिए । क्या रखा है इन पुरानी बातों में ?

विजय—तो तुम्हारे विचार से पुरानी बातें बुरी होती हैं । तुम्हारा शरीर भी तो चालीस साल पुराना हो गया है, उसे क्यों नहीं छोड़ देते ?

(पिता और मुन्शी इस तर्क पर प्रसन्न होते हैं ।)

प्रद्युम्नकुमार—यह भी विचित्र तर्क है । क्या शरीर छोड़ना-न-छोड़ना मेरे हाथ में है ? उस ईश्वर ने शरीर दिया है, जब चाहेगा तब ले लेगा । जब उसे लेना होता है तो वह यत्न थोड़े ही देखता है कि शरीर नया है या पुराना ।

(दोनों उदास हो जाते हैं ।)

विजय—तब यही कैसे कह सकते हो कि पुरानी बातें बुरी हैं । हम भी तो, पिताजी भी तो मनुष्य हैं; हमें ये बातें बुरी नहीं दिखाई देतीं ।

प्रद्युम्नकुमार—आप लोग घर में रहते हैं । मुझे बाहर आना-जाना होता हैं, लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है । मुझे समय के साथ चलना होगा । मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी में भी चलता हूँ ।

राव साहब—**(आश्चर्य से)** पैदल भी ? न जाने क्या होने वाला है इस घर का ? **(तकिये पर मुँह लटकाकर गिर पड़ते हैं ।)**

विजय—**(एकदम दौड़कर पिता को सँभालता है, मुन्शी पंखा करता**

है।) बड़ा अनर्थ हो रहा है। देखो, देखो प्रद्युम्न, पूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे हैं। उनके होंठ क्रोध से हिल रहे हैं। कमरे का वातावरण गुम-सुम हो गया है। हमारी वाणी सूखी जा रही है। क्या तुम कुछ भी नहीं देखते ? अच्छा, तुम इस घर से चले जाओ।

(राव साहब होश में आते हैं। प्रद्युम्न उनकी तरफ़ देखता है, देखता ही रहता है। फिर एक बार चित्रों की तरफ़ देखता है। इतने में एक लड़की—प्रद्युम्नकुमार की—जो लगभग १० वर्ष की है, कमरे में दौड़ती हुई आ जाती है। कन्या एक फ्राक पहने है, अँग्रेजी ढंग के बाल कटे हैं। टाँगें खाली, जूते पहने चली आती है, उसके साथ उसकी ईसाई अध्यापिका भी घुसती है। दोनों जूते पहने भीतर आ जाती हैं और लड़की उसे सब चित्र आदि दिखाती है।)

कान्ता—देखती हो मिस साहब, ये मेरे बाबा हैं। बाबा, ओ बाबा !

कान्ता—**(बाबा के पास दौड़ती हुई, रुककर)** ये हैं हम लोगों के बाप-दादों की तस्वीरें। अरे बाबूजी, आप भी बैठे हैं, गुम-सुम चुपचाप।

मिस—**(आश्चर्य से देखकर)** वेरी स्ट्रेञ्ज ड्रैस ! हाऊ आक्वर्ड इ लुक्स ?

(सब लोग चित्रलिखे-से रह जाते हैं मानो उन्हें काठ मार गया हो। जैसे ही वे कमरे में आने लगी थीं एक नौकर उन्हें रोकने आया था, किन्तु साहस न होने के कारण बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया; वहीं खड़ा रहता है।)

विजय—कान्ता, बाहर जाओ, जाओ बाहर।

मुन्शी—मिस साहब, बाहर जाइए।

राव साहब—न जाने क्या होने वाला है ? आज स्वप्न सत्य हो रहा है ! मैं अब···और··· **(सिर लुढ़क जाता है)** और न···हीं··· **(डर से दोनों स्त्रियाँ बाहर चली जाती हैं। लोग राव साहब को सँभालते हैं। प्रद्युम्न भी पिता के पास आता है।)** तुम मुझे मत छुओ, प्रद्युम्न ! हाथ मत लगाओ। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले

जाना। मेरे पिता, पितामह, प्रपितामह इसी कमरे में मरे थे—इन्ही आसनों पर। यही वंश की मर्यादा है। (**हाथ चित्रों को प्रणाम करने के लिए उठते हैं।**) नहीं, अब और नहीं। सब समाप्त हो चुका।

वं···श···की···म···र्या···दा···

(मर जाते हैं। लोग चित्राभिभूत-से खड़े रहते हैं।)

अशोक वन

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

पात्र

रावण—लंका का प्रतापी राजा, श्री रामचन्द्र का शत्रु (अधेड़)

जानकी—श्री रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी (युवती)

चित्रांगदा—
मन्दोदरी— } रावण की रानियाँ (प्रौढ़)

सुनन्दा—रावण की दासी (किशोरी)

[अशोक वन में जानकी के निवास की रामायण वाली कथा। रावण जानकी के पास अकेले नहीं, अपनी रानियों के साथ गया था। अपने मन पर अंकुश रखने के लिए वह अपनी रानियों के साथ गया था। सीता के हृदय में वह श्री रामचन्द्र को पराजित करना चाहता था, जो सम्भव न हो सका।]

अशोक वन

[शंख और घण्टे की ध्वनि, बीच-बीच में वेद-मन्त्रों के स्वर, अग्नि में आहुति डालने के समय एक साथ निकली हुई कई कण्ठों से 'स्वाहा' की ध्वनि ।]

सुनन्दा—सुनन्दा आ गई देवी ! दासी को कुछ करना है ? अरे, यह क्या बैठी-बैठी सो रही हैं ? पलकें हिलती नहीं । एकटक उधर हाँ, यह कपोत का जोड़ा राजरानी जानकी देख रही हैं । (चलने की ध्वनि) देवी !

जानकी—कौन···तुम···तुम···

सुनन्दा—हाँ देवी, यही दासी सुनन्दा ।

जानकी—आओ बहन, बैठो ।

सुनन्दा—क्या कह रही हैं देवी ? दासी दासी है, बहन वह कब बनेगी ! आपकी बहन इस लंका में केवल राजवधू सुलोचना बन सकेगी। दूसरी तो कोई नहीं ।

जानकी—कौन है यह सुलोचना ?

सुनन्दा—इन्द्र को जीतकर इस लंका में बाँध लाने वाले महाबाहु मेघनाद की स्त्री, आपने जिसे उस दिन देखा था ।

जानकी—हाँ, वही जो उस दिन उस वृक्ष के पास खड़ी थी, मुझे हाथ जोड़कर चली गई ।

सुनन्दा—वही राजवधू सुलोचना है, जिसका शृंगार महारानी मन्दो-दरी अपने हाथ से करती हैं ।

जानकी—नहीं···नहीं···तीनों लोकों में उसका जोड़ कहीं नहीं है

सुनन्दा ! वीर पति की वह ··

सुनन्दा—पर वह आपको अपने से सुन्दर कह रही थी ।

जानकी—यह उसकी कृपा है । दस महीने से पति के विरह में··· आँसुओं में मेरा रूप क्या वह नहीं गया, सुनन्दा ? क्या सचमुच मैं अभी सुन्दर लगती हूँ ? उँह, जाने दो, मैं कैसी हूँ, क्या हूँ, जानकर क्या करूँगी ?

सुनन्दा—क्या देख रही हैं राजरानी ?

जानकी—वह कपोत का जोड़ा···पंछी भी प्रेम करते हैं । मनुष्य ने कभी प्रेम का पहला पाठ इन्हीं से पढ़ा होगा । पंछी का भी एक जोड़ा···

सुनन्दा—सबका एक ही जोड़ा होता है देवी ?

जानकी—कहाँ ? तुम्हारे लंकापति के यहाँ कितनी स्त्रियाँ हैं ? कहते हैं कि कोई जानता ही नहीं कि कितनी स्त्रियों से उन्होंने प्रेम किया होगा । त्रिजटा से मैंने कल पूछा था ।

सुनन्दा—वह तो बढ़-बढ़ कर बोलती है । कुछ उल्टा-सीधा कहा होगा ।

जानकी—तुम जानती हो तो फिर बोलो ।

सुनन्दा—(**असमञ्जस**) मैं···मैं···महारानियों का नाम मैं बता दूंगी ।

जानकी—त्रिजटा भी महारानियों का ही नाम जानती है । पर रावण ने कुल कितनी स्त्रियों पर अब तक कृपा की है, कोई नहीं जानता । तुम्हारी माता महारानी मन्दोदरी की प्रधान सेविका है । मय ने अपनी कन्या के साथ जो एक सहस्र किशोरी दासियाँ दी थीं उनमें तुम्हारी माता भी थी ।

सुनन्दा—हाँ देवी, तब से वे बराबर रावण के रनिवास में रह गईं ।

जानकी—जानती हूँ मैं । इन्द्रजयी मेघनाद तुमसे बड़ा है । मन्दोदरी के पेट से पैदा हुआ वह इस सोने की लंका का युवराज है और कपिला के पेट से पैदा हुई तुम अपने को दासी कहती हो । दोनों ही का

पिता रावण है। देख रही हो अपना और मेघनाद का अन्तर !

सुनन्दा—नहीं-नहीं···ऐसा नहीं देवी ! कोई सुने तो···

जानकी—रावण का प्रताप किसी को सुनने और सोचने न देगा। इन्द्र को जीत लेना मेघनाद के लिए सरल था, पर इन अनीतियों की ओर उँगली उठाना उसके लिए भी सरल नहीं है।

सुनन्दा—इसीलिए छोटे भाई विभीषण से उसकी नहीं पटती।

जानकी—सुना है विभीषण अकेला ही इस लंकापुरी में विचारवान् है, पर शक्ति विचार की बात सुनती कब है !

सुनन्दा—यह सब नहीं देवी, मुझे डर लगता है।

जानकी—इसी डर को तो आर्यपुत्र ने हटाना चाहा और आज मेरी यह दशा है।

सुनन्दा—सुनते हैं, अब आप भी रनिवास में चलेंगी।

जानकी—वहाँ मेरे पैर धरते ही रनिवास जल जाएगा, सोने की लंका जल जाएगी। सुनन्दा, मैं जो यह कपोत का जोड़ा देख रही थी इसे मैंने पञ्चवटी में भी देखा था। आर्यपुत्र ने हँसकर कहा था, पिछले जन्म में हम दोनों कपोत के जोड़े थे। मैं हँसते-हँसते उनकी जाँघ पर लेट गई थी। इस कपोत के जोड़े में···इनके मान-मनुहार में प्रेम की रागिनी को सुनती हूँ। **(सिसकी)**

सुनन्दा—हाय-हाय ! नहीं, नहीं ! ऐसे नहीं देवी ! रोने से क्या होगा ? अब इन आँखों से आँसू···कमल मोती बरसा रहे हैं। राजरानी जानकी···

जानकी—जब अपना बोझ नहीं सहा जाता सुनन्दा, आँसुओं से हल्का होता है। जिस दिन मेरी आँखों से आँसू रुक जाएँगे, उनसे लपट निकलेगी। उसमें यह अशोक वन जल जाएगा, यह सोने की लंका जल जाएगी। जिसे कुबेर से तुम्हारे राजा ने छीन लिया, जिसमें इन्द्र बँधकर आया, जिसके नाम से ही संसार थरथराता है, जिस लंका ने अमरावती के वस्त्र छीनकर उसे नंगी बना दिया है, वही लंका जलेगी, सुनन्दा,

जलेगी।

सुनन्दा—मैं भाग जाऊँगी देवी, आपकी बातों से मैं डर रही हूँ।

जानकी—नहीं-नहीं···तुम्हें डराना मैं नहीं चाहती। बैठो, यहाँ मेरे पास। आज यह अशोक वन इतना सूना क्यों है? लंका के किशोरों और किशोरियों की यह रंगभूमि आज ऐसी गुम-सुम क्यों है? रुनझुन, छम-छम, यहाँ प्रिये, वहाँ प्राण, यह सब आज कहाँ गया? तुम्हारी लंका में सुन्दरियाँ भी हैं सुनन्दा, और प्रेम भी है।

सुनन्दा—आप नहीं जानतीं राजकुमारी!

जानकी—नहीं, क्या बात है, कहो। अब तक तो बस इधर इस एक अशोक-कुञ्ज को छोड़कर यह सारा वन इन्द्रधनुष बन जाता था, जिसमें वस्त्रों के रङ्ग-रूप और अलंकारों की ज्योति होती थी। पिछले दस महीनों में किसी भी ऋतु में, बरसात में भी ऐसा दिन कोई नहीं गया जब इस अशोक वन में लंका का मद न छलकता रहा हो। मुझे तो कई बार ऐसा लगा कि मद के इस समुद्र में अकेली मैं एक विष की लहर हूँ।

सुनन्दा—तब क्या? आप विष की लहर हैं तो अमृत कहाँ होगा?

जानकी—होगा कहाँ! चन्द्रमा में, और उतनी दूर जाने में तुम्हें डर लगे तो फिर राजवधू सुलोचना में देख लो। महारानी मन्दोदरी और चित्रांगदा में कभी रहा होगा। किसी भी किशोरी में रहता है सुनन्दा, तुममें भी है।

सुनन्दा—मुझमें भी है!

जानकी—तुम्हें नहीं दिखाई देगा। जिस दिन कोई तुममें वह देख लेगा···

सुनन्दा—चलिए, हटिए, नहीं बोलती आपसे।

जानकी—मुझसे भाग्य ही रूठा है सुनन्दा! मैं रघुवंश की वधू इस अशोक वन में ऐसी बन्द हूँ कि रात को आकाश के तारे और दिन को पेड़ों के पक्षी। राक्षसराज का अनुग्रह है कि नित्य कोई सखी भेज देते हैं।

सुनन्दा—इस लंका की दासियाँ आपकी सखी हैं? और जब रनिवास

में सबसे ऊँचे मणियों के आसन पर बैठेंगी तब भी सखी मानेंगी ?

जानकी—मेरा रनिवास अयोध्या में है सुनन्दा, इस लंका में नहीं।

सुनन्दा—वह भी सोने की है ?

जानकी—नहीं ··सोने का रनिवास वहाँ होता है जहाँ दूसरों को लूटकर, दूसरों को बिगाड़कर धन कमाया जाता है; जहाँ एक मनुष्य या एक परिवार अनेक मनुष्यों का रक्त चूसता है। इस लंका की नींव में रक्त है। अयोध्या मिट्टी की बनी है—उस मिट्टी से, जिसके गर्भ से सोना भी निकलता है। तुम्हारी आँखों में सोना जो समा गया है इसलिए तुम मिट्टी का मोल न जान सकोगी। हाँ, मन आज उड़ा जा रहा है। कहीं टिकता नहीं सुनन्दा ! क्या कहने को, क्या कहने लगती हूँ।

सुनन्दा—मन के भी पंख हैं, वह भी उड़ता है !

जानकी—क्या कह रही थी, यह अशोक वन क्यों सूना है ?

सुनन्दा—मैं तो भूल ही गई। आपकी बातों में कुछ टिकता ही नहीं, सब भूल जाती हूँ।

जानकी—तो अब न भूलो, कहो अब···

सुनन्दा—राजा ने आज इधर का रास्ता बन्द करा दिया है। कोई भी आज अशोक वन में नहीं आ सकेगा। रास्ते से ही सब लौट रहे हैं। सबके मुख पर जैसे उदासी नाच रही है।

जानकी—एं, क्या बात है ? लंकेश मुझे अब किसी का मुख न देखने देंगे, किसी की मीठी बोली मेरे कान में अब न पड़ेगी। चिन्ता नहीं, देवजयी रावण को इस अशोक वन में एक अबला से हारना होगा। हारना होगा, सुनन्दा ! गाँठ बाँध लेना, यही होगा।

सुनन्दा—ऐसे काँप रही हो देवी, जैसे केले का पत्ता काँपता है या जल में कमल काँपता है। और हाथ से यह छाती क्यों दबा रही हो ? हैं, हैं, कहीं कोई पीड़ा है देवी ? वैद्य को कहूँ तब···

जानकी—इस पीड़ा की दवा किसी वैद्य के पास नहीं है सुनन्दा ! पंचवटी में देवर लक्ष्मण ने धनुष की नोक से जो गोल घेरा बना दिया

था उसे भी यह अभागा···

सुनन्दा—ऐसा साहस ! राजरानी सीता, इन्द्र, यम, कुबेर, मरुत लंकापति को गाली नहीं दे सकते ।

जानकी—उन्हें तुम्हारे लंकापति का भय है। जानकी भी कभी मृग के छौने से भागती थी, पर अब वह काल की आँखों से आँखें मिला लेगी। तुम्हारे लंकेश मेरी ओर देख भी नहीं सकते, सुनन्दा ! फिर भी खेद है मैंने उनके लिए अभागा शब्द से काम लिया। अपना शील, अपनी मर्यादा मुझे न छोड़नी चाहिए। क्रोध अन्धा बना देता है, विचार उड़ जाता है। क्षमा करना बहन ! जानकी अपने वैरी का मंगल चाहेगी। इस लंका में हर ओर से विवश, क्रोध से नहीं, शील से, संयम और सन्तोष से मेरा भला होगा। यह अशोक वन जैसा अब रात को रहेगा वैसा ही दिन को।

सुनन्दा—कौन कहे देवी, कल क्या होगा ? बड़े-बूढ़े कहते हैं, यहाँ जो कभी नहीं हुआ वही हो रहा है। समुद्र किनारे पर चढ़ रहा है। यह लंका कभी डूब जाएगी।

जानकी—समुद्र किनारे पर चढ़ रहा है ?

सुनन्दा—तो आप कभी सागर-तट नहीं गईं ! इस अशोक वन के दक्षिण में समुद्र है। जो पेड़ किनारे से सौ गज़ भीतर लगाये गए थे अब उतनी ही दूर पानी में चले गए हैं।

जानकी—समुद्र भी अपनी सीमा छोड़ रहा है तो फिर रावण को दोष क्या दें ?

सुनन्दा—पर कहा यही जा रहा है कि रावण के पाप से यह हो रहा है। आप कहती हैं कि लंका जल जाएगी और यहाँ तो लोग कहते हैं कि लंका डूब जाएगी। आज ही महारानी चित्रांगदा से एक ज्योतिषी बाबा कह रहे थे कि लंका पर भारी संकट आ रहा है।

जानकी—तब ?

सुनन्दा—तब रानी उदास हो उठीं और हाँ, मैं तो भूल गई। वह

आज यहाँ आयेंगी ।

जानकी—यहाँ आयेंगी, महारानी चित्रांगदा !

सुनन्दा—कहा था, विदेह िन्दिनी से कह देना, आज उनके दर्शन करूँगी ।

जानकी—आज यहाँ सब क्या हो रहा है सुनन्दा ? कहो, तुम कुछ जानती हो ?

सुनन्दा—नहीं देवी, मैं कुछ नहीं…

जानकी—कोई नया छल, नया जाल ? सुनन्दा, इस अशोक वन में आने का रास्ता बन्द है । रानी चित्रांगदा मेरे दर्शन को आ रही हैं । यहाँ की वायु में दम घुट रहा है । यह लंका संसार को पीसने के लिए नित्य नया चक्र बनाती है । आज भी कोई चक्र बन रहा है और क्या यह चक्र आज मेरे लिए तो नहीं है ?

सुनन्दा—महारानी चित्रांगदा की दया इस लंका में कौन नहीं जानता ?

जानकी—तो महारानी दस महीने कहाँ रहीं ? आज ही अशोक वन में किसी के आने की आज्ञा नहीं है और आज ही वे महारानी यहाँ आ रही हैं । क्या समझा जाए सुनन्दा ? फिर भी क्या कहा था उन्होंने, कैसे ? याद करो जैसे कहा था उन्होंने…

सुनन्दा—रानीजी, आप साँस ऐसे क्यों ले रही हैं ? छाती के भीतर धौंकनी चल रही है । महारानी चित्रांगदा कभी किसी का बुरा नही करतीं ।

जानकी—किसी का नहीं करतीं, पर मैं उनके शत्रु की स्त्री जो हूँ । मुझ पर भी वे दया कर सकेंगी ? जो होगा देखूँगी सुनन्दा ! नीचे धरती भी रहेगी, ऊपर आकाश भी रहेगा । इस अशोक वन में लाल फूल बहुत होंगे और लाल हो जाएँगे ।

सुनन्दा—आप डर रही हैं ।

जानकी—नहीं तो, डर तो मुझे अब यमराज के भैंसे की घण्टी भी

न दे पाएगी। जो अब तक न हुआ, आज हा रहा है। कैसे कहा उन्होंने, रानी चित्रांगदा ने क्या कहा मेरे लिए ? ऐसे कहो कि मेरे कान उन्हीं की बातों को सुन रहे हों।

सुनन्दा—उनके भवन में बूढ़े ज्योतिषी को घेरकर हम लोग खड़ी थीं। उन्होंने पूछा, आज अशोक वन में किसे जाना है ? मैं जा रही हूँ महारानी, मैंने कहा।

जानकी—तब…

सुनन्दा—तब वे मुस्कराकर मेरी ओर देखती रहीं और बोलीं, कह देना विदेह-नन्दिनी से, आज मैं उनके दर्शन करूँगी।

जानकी—उनकी आँखों में क्या था, देखा…

सुनन्दा—आँखों में क्या था ? क्या होता है आँखों में ? आँखें थीं और क्या, आँखें किरकिरी भी नहीं सह पातीं।

जानकी—फिर भी आँखों में समुद्र होता है, आकाश होता है, आग होती है सुनन्दा ! आँखों में अमृत और विष भी होते हैं; आँखों में जो कुछ भी इस धरती पर है सब रहता है।

सुनन्दा—हो…हो… कौड़ी-भर आँख में समुद्र, आकाश है। हूँ, तो फिर महारानी की आँखों में क्या था, ऐं…ऐं… समुद्र बड़ा है कि आकाश, जो बड़ा हो वही।

जानकी—यहाँ इस लोक में विस्मय की कमी नहीं है। चित्रांगदा यदि मुझे कन्या बना ले, बेटी का बोल एक बेर बोल दे, मेरा पुण्य जो कभी भी सहाय न हुआ बस आज एक बार सहाय हो, तो फिर इस लंका का ही नहीं इस संसार का यह सबसे बड़ा विस्मय आज होगा सुनन्दा ! मेरे कानों में कोई यह कह रहा है, बेटी जानकी ! किसकी बोली है यह ? किसकी ? महारानी चित्रांगदा की या किसी दूसरे की ?

सुनन्दा—अरे, अरे ! सचमुच आप सुन रही हैं देवी, कोई कह रहा है ?

जानकी—तुम नहीं सुन रहीं ! 'पुत्री जानकी', 'बेटी जानकी' इस

सारे अशोक वन में गूंज रहा है। धरती के भीतर से यह ध्वनि, ऊपर आकाश से यही ध्वनि; कोयल की कूक से मीठी, वीणा की रागिनी से मोहक, किसकी ध्वनि है यह सुनन्दा, जिसमें प्राण ऐसा नाच रहा है कि भँवर में नाव ?

सुनन्दा—भँवर में नाव···फिर, जो डूब जाए।

जानकी—तब प्राण डूब जाएगा।

सुनन्दा—और तब क्या होगा देवी ?

जानकी—इसके बाद भी कुछ होता है री ! प्राण के डूब जाने पर कोई नहीं, कोई नहीं कहेगा सुनन्दा ! तब क्या होता है ? प्राण के डूब जाने पर वियोग की आग बुझ जाती है, शोक और पीड़ा छू-मन्तर हो जाते हैं, और भी कुछ होता है, कुछ ऐसा जिसका स्वाद कहा नहीं जाता।

सुनन्दा—जो शब्दों में नहीं साँसों में बहता है, ऐसे साँस लेकर कोई कब तक जियेगा ?

जानकी—मैं मरूँगी नहीं। मुझसे डरकर मृत्यु ही भाग जाएगी। विदेह की पुत्री और दशरथ की वधू, जो कभी वन के चित्र से भी डरती थी, दण्डकारण्य का कोना-कोना छान चुकी है। जिसके पैर पर्वतों के सिरों पर और अगम्य नदियों के जल में पड़े हैं; सिंह की आँखों से जिसकी आँखें मिलीं; कन्द-मूल का जिसने आहार किया। कितना देखा और अभी कितना देखूँगी सुनन्दा ! ब्रह्मा ने जिस दिन मुझे रचा होगा उनके हाथ थक गए होंगे। (**नेपथ्य में—ऐसी रचना बार-बार नहीं होती। एक ही जानकी के बनाने में विधाता की सारी कलाएँ लग गईं। न कोई दूसरी जानकी बनी थी अब तक और न अब बनेगी। जब तक यह सृष्टि चलेगी वैदेही, तुम नारी-महिमा की मेखला रहोगी। तुम्हारा नाम लेकर, देवी, पतिव्रता की धार पर स्त्रियाँ चढ़ेंगी।**)

जानकी—ऐं···सुनन्दा ! अमृत की यह वर्षा, इस लंका में पार्वती, शची, लक्ष्मी या माता धरती इस रूप में···

चित्रांगदा—पार्वती, शची, लक्ष्मी या माता धरती नहीं सौभाग्यवती,

इस धरती की धूल से बनी चित्रांगदा, जिसकी रचना में ब्रह्मा ने दो बार टेढ़े-मेढ़े हाथ चला दिए थे ।

जानकी—(**गद्‌गद कंठ से**) नहीं माँ, ऐसा नहीं । तुम्हें देखकर पार्वती, शची और लक्ष्मी की कल्पना रूप धर लेती है ।

चित्रांगदा—यह भार मेरे मान का नहीं है, किसी भी स्त्री के मान का नहीं । सुनयना ने तुम्हें जन्म दिया था, फिर भी मैं कहूँगी, यह भार उनसे भी न चलेगा । तुम्हारी माँ अब केवल यह धरती हो सकेगी, जिसके विस्तार में तुम्हारा विस्तार, जिसकी क्षमा में तुम्हारी क्षमा, जिसके स्नेह में तुम्हारा स्नेह और जिसके धैर्य में तुम्हारा धैर्य है, और तुम मेरा संकट जानती हो, नहीं तो फिर जैसे पत्थर महादेव बनता है मैं तुम्हारी माँ भी बन जाती ।

जानकी—महादेव भी संकट में हैं जिनके संकट पर त्रिलोकजयी लंकापति···

चित्रांगदा—यही मेरा गर्व है । मैं अजेय प्राणनाथ की प्रिया हूँ । रूप और पौरुष, तपस्या और शक्ति में जो इस जगत् में अकेले हैं ।

जानकी—तब यह संकट ?

चित्रांगदा—वह मुझे ही कहना पड़ेगा ? दस महीने से नित्य क्या तुम नहीं सुन रही हो कि राक्षसराज तुम पर अनुरक्त हैं ?

जानकी—क्या···उन्होंने कभी कहा ? महात्मा रावण को मैं कलंक नहीं लगाऊँगी ।

चित्रांगदा—उन्होंने नहीं कहा, किन्तु दासियों ने ? उनकी ओर से जो बार-बार तुम्हारे श्रृंगार का आग्रह हुआ, प्रसाधन की वस्तुएँ जो यहाँ नित्य आती रहीं ? इस अशोक वन के पत्ते-पत्ते ने, पक्षी-पक्षी ने, रात को चन्द्रमा और तारों-भरी रात ने क्या यह तुमसे नहीं कहा ? मेरे पति जिसके प्रेम में घुले जा रहे हैं, वह मेरी सखी हो सकेगी, बहन हो सकेगी, किन्तु पुत्री कैसे ?

जानकी—देवाधिदेव शंकर की उपासना और इन्द्रजयी पुत्र के विक्रम

से राक्षसराज की कामनाएँ नहीं मिटीं ? माता, क्या कह रही हो तुम यह...

चित्रांगदा—छाती पर पत्थर रखकर कह रही हूँ। पति की कामना में योग देना नारी का सबसे बड़ा धर्म है।

जानकी—तो आज तुम इसलिए आई ? नहीं-नहीं, विश्वास नहीं होता देवी ! राक्षसराज की कामना में योग देना तुम्हारा सबसे बड़ा धर्म है और मेरा क्या है ?

चित्रांगदा—अपने धर्म की बात मैं जानती हूँ, तुम्हारे धर्म की बात जो मैं तुमसे कहूँ तो वह पति की कामना के विरोध में होगी।

जानकी—बस-बस माँ, कह दिया तुमने मुझसे मेरा धर्म, जाने दो, जो स्थान आर्यपुत्र से भरा है उसका सपना भी विजयी रावण न देख सकेंगे

चित्रांगदा—नारी का सबसे बड़ा बल और विश्वास यही है देवी !

जानकी—इसी बल और विश्वास से किसी भी दिन राक्षसराज का मद मैं उतार दूँगी। इस शरीर की दो ही सीमाएँ हैं—जन्म और मृत्यु। एक मैं पार कर चुकी हूँ, दूसरी पार कर लूँगी, यदि रावण के अमोघ शस्त्र कभी इस शरीर पर भी पड़ें। महावीर नारी-वध कर आप ही मर जाएगा।

चित्रांगदा—कभी नहीं। लंकेश इन्द्रियजयी हैं, वे अनाचार नहीं करते।

जानकी—तब फिर वे ऐसा स्वप्न क्यों देखते हैं ?

चित्रांगदा—उन्हें विश्वास है, उनके रूप, गुण, विभव और बल पर तुम किसी दिन मोहित होकर रहोगी।

जानकी—और तब मैं उनसे प्रणय-निवेदन करूँगी ?

चित्रांगदा—शब्दों से न सही, अनुभव और चेष्टा से।

जानकी—ऐसा है ? आर्यपुत्र का रूप तब उन्होंने नहीं देखा। गुण और बल भी किसी दिन देख लेंगे।

चित्रांगदा—अपने युग के दो सबसे प्रतापी पुरुष एक स्त्री के लिए संग्राम करेंगे, जिसकी जीत होगी स्त्री उसी की होगी।

जानकी—तब कहो कि स्त्री भी भूखण्ड है, धन की पिटारी या मणिमाला है, जो जीतेगा उसे उठा लेगा। उसकी न कोई रुचि है न कामना। वह चेतन भी नहीं है। अयोध्या का राजपाट छोड़कर जो पति के साथ वन को चल पड़ी, पति का प्रेम ही जिसका विभव रहा, वह किसी दिन वैभव की चमक में अपनी आँखें फोड़ लेगी। शस्त्र से नारी का हृदय नहीं जीता जाता, देवी !

चित्रांगदा—ये ही बातें कह सकोगी उन देवजयी से...

जानकी—देवजयी ? उनके लिए अब यह प्रशस्ति पौरुष की विडम्बना है, देवी ! जिसमें इतना संयम नहीं, जो दूसरे की विवाहिता का प्रेम चाहता है।

चित्रांगदा—मैं तुम्हारे पति की निन्दा नहीं करती।

जानकी—मैं भी निन्दा के लिए नहीं, सत्य के लिए कह रही हूँ। अब तक तो रावण से मैं डरती थी, किन्तु अब नहीं। पंचवटी में डरी थी। मन कड़ा नहीं था। इस लंका में न डरूँगी।

चित्रांगदा—उनकी ओर तुम देख सकोगी ?

जानकी—जो मेरे प्रेम के मोह में डूब रहा है, उसकी ओर देखना नारी की मर्यादा के विरुद्ध होगा। पर-पुरुष की ओर देखती भी नहीं देवी ! फिर भी उस घड़ी मनोबल से काम लेना होगा। राक्षसराज विजयी हैं, बली हैं, दया और नीति में भी उन पर सन्देह नहीं। मेरे साथ उनका कोई भी व्यवहार उद्धत या अशिष्ट न हुआ। मेरे अभाग्य की यह अन्तिम कड़ी है देवी, कि आर्यपुत्र के शत्रु लंकापति बन गए। इन दोनों महापुरुषों के वैर का कारण मैं हूँ।

चित्रांगदा—ऐसी ही होनी थी। होनी कब टली है ?

जानकी—पुरुष अधिकार और अहंकार में युद्ध करते हैं। नारी चुप-चाप यह संहार देखती है। हम दोनों में किसी को विधवा तो होना ही

है, इस युद्ध का यही परिणाम होगा। क्या हम यह देखती रहेंगी? तुम चाहो तो रोक सकती हो माँ...

चित्रांगदा—किस तरह बेटी? नारी राजनीति में नहीं पड़ती। हाय, क्या कह गई?

जानकी—माँ!...तुमने मुझे बेटी कह दिया। मेरा पुण्य सहायक हो गया, तुम्हें देखते ही माता सुनयना की याद पड़ी थी। तुम दोनों जो एक ठौर रहो तो पहचानना कठिन होगा।

चित्रांगदा—कैसा जादू मुझ पर हो गया? मैंने बेटी कह ही दिया।

जानकी—और इसका दुःख तुम्हारी आँखों में उतर आया है माँ! साँस में होकर भी यही दुःख बह रहा है। सुनन्दा, कहा था मैंने यही न?

सुनन्दा—हाँ देवी! पैर धरती पर डगमगा रहे हैं। आप तो कह रही थीं, महादेवी आपको बेटी कहेंगी; कह दिया उन्होंने। आप जादू जानती हैं।

जानकी—(हँसते हुए) देख लो मेरी और महारानी की ओर। क्या मैं इनकी बेटी नहीं लगती? इनकी आँखों-सी मेरी आँखें हैं। नाक, होंठ, क्या नहीं है इनके साँचे का मेरा? ठीक से मिलाकर तो देख। इनकी आयु के प्रायः चालीस संवत्सर और मेरे अठारह। माता और पुत्री की आयु का यही अन्तर भी होता है।

चित्रांगदा—तो अब मैं कहूँगी बेटी, कहती ही रहूँगी, बेटी जानकी!

जानकी—भाग्य के मुँदे किवाड़ खुल गए, माँ!

चित्रांगदा—पर मैंने तो पति के साथ विश्वासघात किया।

जानकी—कभी नहीं माँ! पति को वासना से रोकना भी पतिव्रत है।

चित्रांगदा—पर वे यह न मानेंगे।

जानकी—अब यह मुझ पर छोड़ दो। मैं उन्हीं से पूछूंगी, क्या उनका अनुराग वात्सल्य न हो सकेगा?

चित्रांगदा—वे अभी आयेंगे। मैंने उन्हें बुलाया है यहाँ। किस

कामना में आयेंगे वे, और यहाँ तो यह धरती उलट गई।

जानकी—हाय माँ, तुम भी हमें छलने आई थीं अबला होकर? नारी भी नारी के साथ छल करती है?

चित्रांगदा—यदि नारी की सहायता न हो तो पुरुष नारी को छल नहीं सकता। जहाँ कहीं भी नारी छली गई, किसी-न-किसी नारी के कारण। पुरुष संसार जीत सकता है, सिंह और मतवाले हाथी को वश में कर सकता है, किन्तु नारी उसके लिए सदैव अजेय है।

जानकी—(**गम्भीर ध्वनि**) ऐसी कातर न बनो माँ! बेटी का सहारा केवल माता है। संकट में उसके मुँह से माँ की ही बात निकलती है। तुमने मुझे वही दिया है जिस पर मेरा अधिकार प्रकृति ने ही दिया था। प्रकृति का अधिकार बुद्धि हटाती है, मन तो उसे मान ही लेता है।

चित्रांगदा—यही सही। मैं फिर आई किस लिए और यह क्या हो गया; मेरी बेटी बनने का अधिकार तुम्हें प्रकृति ने दे दिया था। मेरे निकट इस तरह सटकर खड़ी होने पर तुम मेरी कन्या-सी लग भी रही हो। तुम्हारी माता महारानी सुनयना और मुझमें कोई भेद नहीं है, यह भी कह रही हो।

जानकी—यही नहीं माँ, जैसी वे हैं तुम भी वैसी ही हो। मेरी आँखों में भेद नहीं बैठता तो फिर दूसरे तो भ्रम में पड़ेंगे ही।

चित्रांगदा—यह कैसी ध्वनि है? रथ के चक्र की घरघराहट, ऐं··· ऐं···सुनन्दा!

सुनन्दा—उत्तर द्वार से आगे अभी रथ है।

चित्रांगदा—फिर भी इस रथ की ध्वनि एक योजन से सुनाई पड़ती है, इस रथ के चक्कों से देव-विजय का नाद निकलता है।

जानकी—हाँ, पंचवटी में यही रथ गया था। इसी रथ ने घने वन और पर्वतों को पार किया था।

चित्रांगदा—विदेह-नन्दिनी, मेरा एक भी मनोरथ पूरा नहीं हुआ। मैं आई थी तुम्हारा शृंगार करने।

जानकी—वस्त्र और शृङ्गार की यह सामग्री महादेवी अपने हाथों ले आईं ?

चित्रांगदा—जिसने तुम्हें इतना दुःख दिया, जो तुम्हारे पति का दारुण वैरी है, उसकी स्त्री मैं तुम्हारा शृङ्गार करूँगी और जब तुमने माता कहा, मेरा आग्रह न टालोगी।

जानकी—हाय माँ, शृङ्गार अपने लिए नहीं होता ! आर्यपुत्र अपने हाथ मेरे केस संवारकर फूल लगाते थे। वनवासी पति के पास दूसरे साधन कहाँ थे ! शृङ्गार तो अयोध्या में ही छूट गया। वनवासिनी का शृङ्गार ! वह भी विरह के दाह में !

चित्रांगदा—इसलिए कि तुम्हें शोक में देखकर लंकापति का अनुराग और न उमड़ पड़े। शृङ्गार नारी के रूप को नहीं, तेज को भी बढ़ाता है। शृङ्गार जीवन का लक्षण है जानकी ! तुम्हें आज अपने तेज से लंकेश को जीतना है। तुम्हारे तेज की शिखा में उनकी आँखें न खुलें। यहीं इस आसन पर बैठ जाओ। मुझे कोई बेटी न हुई, तुम्हारा शृङ्गार करके अपनी साध पूरी कर लूं।

जानकी—समझकर देवी ! रूप का सम्मोहन, रूप का मद और विष घातक भी होता है।

चित्रांगदा—उनके लिए, जो दुर्बल मन के होते हैं। वे, जो मन के विजयी हैं, रूप के विस्मय में धरती से ऊपर उठ जाते हैं।

जानकी—तो नहीं मानोगी ?

चित्रांगदा—अब नहीं। (**बैठने की ध्वनि**)

जानकी—तो फिर रहा माँ का आग्रह, पर इन पटु हाथों की सारी कला न लगा देना।

चित्रांगदा—जहाँ ब्रह्मा ने अपनी सारी कला लगा दी है, मैं भी अब कसर न रहने दूंगी। समय नहीं है, फिर भी कला की गति समय और सीमा को पार कर जाती है।

(**रथ की घरघराहट और अकस्मात रुक जाना**)

मन्दोदरी—रथ क्यों रुक गया प्रभु ?

रावण—देख रही हो प्रिये ! यह रथ यहीं रुका है।

मन्दोदरी—इसी पर तो देवी चित्रांगदा आई थीं, उन्हीं का रथ है यह।

रावण—पुलोम पुत्री शची-जैसी सुन्दरी और सुकुमारी चित्रांगदा रथ छोड़कर कहाँ पैदल गई ? जैसे किसी देवी की पूजा के लिए मन्दिर से दूर रथ छोड़ दिया हो।

मन्दोदरी—इसीलिए तुमने भी रथ रोक दिया।

रावण—इन्द्र और देवरथियों के सामने इस रथ का प्रताप है देवी ! विदेह-नन्दिनी जानकी के पास इस रथ पर जाना उसे भय देना होगा। लोक-विजयी मैं इसलिए नहीं हुआ कि एक अबला को भय दूँ।

मन्दोदरी—उसका अनुराग छोड़ दो नाथ ! संसार में सुन्दरियों की कमी नहीं है।

रावण—जिस शत्रु ने वहन सूर्पणखाँ के नाक-कान काट लिये, जिसने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया, जो पंचवटी में केन्द्र बनाकर मेरे राज्य में विद्रोह फैला रहा है, उसका क्या उपाय करूँगा ? जानकी-हरण मैंने नीति के अनुरूप किया। शत्रु की रमणी का अपहरण नीति है और अब जब उसे यहाँ ले आया तो उसके प्रति भी कोई धर्म है या नहीं? प्रतिहिंसा में उसके नाक-कान काट लेना ही साधारण पुरुष का काम होता, तुम जानती हो रावण असाधारण हैं।

मन्दोदरी—तीनों लोक जानते हैं। लंकापति वीर ही नहीं, नीति और मर्यादा के समुद्र हैं।

रावण—जो कोई नहीं करता वह मैं करना चाहता हूँ। शत्रु-शोधन के लिए मैं अपना प्रणय उसकी प्रेयसी को देता हूँ। इसमें वासना नहीं, त्याग है प्रिये !

मन्दोदरी—लेकिन उसके सामने तुम्हारे प्रणय का कोई मूल्य नहीं है।

रावण—यही विस्मय है। जनक की यह कन्या किस धातु की बनी है ? अशोक के एक वृक्ष की वायु दस दिन में किसी भी रमणी के भीतर पुरुष की कामना जगा देती है, पुरुष के अंक में देह को शिथिल कर देने की लालसा नारी के रोम-रोम से निकलने लगती है प्रिये ! प्रणय का गहरा रंग अशोक के तने पर तलवे रगड़ने से, उसकी पत्तियों को छूने से और उसके फूल को देखने से रमणी पर छा जाता है।

मन्दोदरी—ओह ! तो फिर तुमने जानकी को अशोक वन में इसलिए रख दिया कि अशोक की वायु, उसके फूल और पत्तों के प्रभाव से उसके भीतर पुरुष की वासना बढ़ेगी ?

रावण—हाँ...यह तो मैंने पंचवटी से यहाँ तक के रास्ते में देख लिया था कि इस जानकी पर पुरुष के वे शस्त्र व्यर्थ होंगे जो किसी भी युवती को जीत लेते हैं। रूप, बल, विभव और आतंक का प्रभाव पड़ना उस पर सम्भव नहीं, तब उसे अशोक वन के बीच रख दिया।

मन्दोदरी—और दस महीने निकल गए, उसे एक नहीं कई सौ अशोक वृक्षों की वायु पीते, अशोक के पत्तों की सेज पर सोते, अशोक के फूलों की गन्ध लेते, फिर भी अभी वह नहीं पिघली। प्रणय की वंशी उसके कानों में न बजी, न उसकी आँखों में प्रणय का मद चढ़ा और... और न ही उसके अधर और कपोल लाल हुए।

रावण—देखी थी प्रिये, तुमने कभी कोई दूसरी स्त्री, जिस पर अनुराग के सारे साधन इस तरह से व्यर्थ हुए हों; प्रकृति के अमोघ प्रभाव भी जिस पर काम न करें ? देख चुका हूँ मैं, प्रिये, अमरावती की देव-कन्याओं को। पारिजात की एक माला उनके कण्ठ में डालकर कोई भी पुरुष उनका प्रणय पा जाता है।

मन्दोदरी—किन्तु अमरावती में विवाह के बन्धन चलते नहीं, पति और पत्नी वाली बात वहाँ नहीं है। वहाँ सभी पुरुष और स्त्री हैं। आँखें लगीं...ललाट पर पसीने की बूंद झलक पड़ी, अधर और कपोल लाल बने, साँस की गति बढ़ी और बस दो एक हो गए। इस जानकी की बात

दूसरी है। जिस संस्कार में, जिस देश, कुल और विधान में इसका जन्म हुआ···इसके लिए पुरुष एक ही है। श्री रामचन्द्र को छोड़कर इतने बड़े लोक में इसके लिए दूसरा पुरुष पैदा नहीं हुआ।

रावण—पर उस राम में कौन सी बात है! वह वीर है, पर वीरों की भी कमी नहीं। वह रूपवान है, दूसरे भी उसकी कोटि के पुरुष निकल आएँगे। पिता ने जिसे वन भेजा, कन्द-मूल जिसका भोजन है और भूमि जिसकी सेज है, उसमें इस जानकी के प्राण कैसे बँधे हैं, किस सुख और विलास की सम्भावना में इस त्रिलोक-सुन्दरी का मन उसमें ऐसा उलझा है जो छूटता ही नहीं!

मन्दोदरी—तुम पुरुष हो, ज्ञान और विज्ञान को तुम जानते हो, उसमें नारी के वे रहस्य नहीं खुले। और तुम एक ओर नीति और देव-जयी यश को लिये हो, दूसरी ओर इस तपस्विनी के अनुराग को। दो नावों पर एक साथ नहीं चढ़ते।

रावण—तो क्या मैं आज उसे इस रथ पर वैसे ही बिठा लूं जैसे पंचवटी में बिठाया था और फिर···

मन्दोदरी—कहो भी, रुक कैसे गए···

रावण—और फिर से उतारकर अपने भवन में···नहीं प्रिये, यह अनीति होगी। रावण उस नारी को ग्रहण कभी नहीं करेगा जिसकी आँखें उसका स्वागत न करें, जिसके कपोल उसे देखकर टहटहे लाल न हो जाएँ, जिसकी हर साँस में अनुराग की रागिनी न हो।

मन्दोदरी—पर तुम उसके निकट कभी अकेले गये भी तो नहीं?

रावण—इन्द्र के वज्र को मैंने रोक लिया। यम के दण्ड, वरुण के पाश, आराध्य शंकर के त्रिशूल की ओर मैं निर्भय देख लेता हूँ, पर जनक की इस कन्या की ओर देखना भी मेरे लिए सम्भव नहीं। उसके निकट अकेले चला जाना, एकान्त में उसके रूप का दर्शन···कह रही हो प्रिये! पलक नहीं गिरेगा और विवेक उड़ जाएगा। मैं अपने को रोक सकूंगा? यही कहने के लिए कि लोकजयी लंकापति अन्त में एक अबला से हार गया।

मन्दोदरी—तब फिर इस तर्क से लाभ ? तुम उसे लौटा दो। इन्द्रजीत या प्रलम्ब से कहो, उसे राम को दे आए।

रावरण—मैं उसे यहाँ ले आया, अपने से लौटाऊँ तो फिर क्या संसार कहेगा ? शत्रु की स्त्री का मैंने हरण किया था तो वह अब मेरी होगी। यदि राम में बल होगा तो मुझे हराकर उसे ले जाएगा। निराशा मेरे लिए नहीं है प्रिये ! चलने दो यह द्वन्द्व। विश्वजयी रावण एक ओर और यह जानकी, मोहिनी जानकी दूसरी ओर। संसार का सबसे प्रतापी पुरुष और संसार की सबसे सुन्दरी रमणी !

मन्दोदरी—राम को पता चलेगा तब ···

रावरण—इन्द्र की चिन्ता जिसे नहीं हुई वह इस वनवासी राम की चिन्ता करेगा, प्रिये ! वीर रमणी हो तुम, यह निर्बलता तुम्हें शोभा नहीं देती।

मन्दोदरी—इस अग्नि-शिखा जानकी को लौटा दो नाथ, नहीं तो फिर लंका जलेगी।

रावरण—उस दिन जब प्रलय होगी, शंकर का ताण्डव इस सृष्टि का नाश करेगा, महादेव के शृंगीनाद में उनका यह भक्त भी नाचेगा प्रिये ! जो शंकर के बल से बली है वह राम की चिन्ता कैसे करे ?

मन्दोदरी—राम का बल अभी तुमने नहीं देखा। खरदूषण का जिसने वध किया, बालि जिसके बाण से मरा, फिर भी जिस दिन मैं तुमसे बलवान किसी दूसरे पुरुष को मानूँगी उस दिन धरती में समा जाऊँगी। राम का बल राम में न देखकर जनक की पुत्री जानकी में देखो। दस महीने अशोक वन में रहकर भी जिसके मन में किसी दूसरे पुरुष की, यहाँ तक कि तुम्हारी कामना भी जिनके मन में न हुई यह किस बात की सूचना है ?

रावरण—किस बात की प्रिये ?

मन्दोदरी—जिस पुरुष को तुम उसकी स्त्री के मन से पराजित न कर सके, उसे तुम रण में पराजित न कर पाओगे।

रावण—यही तो चाह थी कि पहले उसे उसकी प्रेयसी के मन से पराजित करूँ। फिर भी चिन्ता नहीं, अपराजित रावण पराजित न होगा।

मन्दोदरी—तो क्या तुम उसे इस अशोक वन से न निकालोगे ? उसे यहीं रहने दोगे ?

रावण—जिससे उसके रोम-रोम से, उसकी हर साँस से, प्रेम का, प्रणय का, अनुराग का संगीत निकले।

मन्दोदरी—इतने निठुर न बनो, नाथ !

रावण—निठुर ? शत्रु की रमणी को इतना मान कब किसने दिया होगा, प्रिये ? पर अब चलें, देवी चित्रांगदा राह देखती होंगी। देखूँ, आज भी उसने शृङ्गार करने दिया या नहीं। यदि मैं निठुर हो पाता, नीति और मर्यादा से डग-भर भी डिगता, तो अब तक यह जानकी कब की मेरे अंक में आ चुकी होती। हाँ, क्या कहती हो ? कहूँ मैं उससे, आज से अब राम को भूलकर मेरा प्रणय ले, जिसे देव कन्याएँ भी लेना चाहेंगी।

मन्दोदरी—और यदि वह कुछ न बोले ?

रावण—मेरी दोनों रानियाँ उसका मौन भी न तोड़ सकेंगी।

मन्दोदरी—और कहीं तुम उसे भय दो ?

रावण—भय से प्रेम नहीं लिया जाता। मैं उससे पूछूँ, राम में मुझसे अधिक गुण क्या हैं ? देखें क्या कहती है ? चलो रथ यहीं छोड़-कर चलें। देखें चित्रांगदा क्या कर रही है ?

(दोनों के चलने की ध्वनि)

मन्दोदरी—देख रहे हो, चित्रांगदा उसकी वेणी में अशोक के फूल लगा रही है।

रावण—देख रहा हूँ। उर्वशी, रम्भा, मेनका की वेणी मैं देख चुका हूँ। कहीं भी विष की यह लहर नहीं देखी।

मन्दोदरी—उसका मुख देखकर मूर्छित तो न हो जाओगे ?

रावण—इसीलिए तो दो रानियों के साथ चला हूँ। यही भय था। अपवाद और आघात दोनों से बचा रहूँ।

मन्दोदरी—देवी चित्रांगदा से भी सुन्दरी है यह जानकी! देख रहे हो, उसके शृङ्गार में संगीत से भी काम ले रही हैं।

रावण—फिर भी तुम निठुर कह रही हो। तुमने मुझे इन्द्रजीत जैसा रत्न दिया, किन्तु प्रणय की भूख तो चित्रांगदा से ही मिटी। मेरी वही प्रियतमा इस अभिमानिनी के शृङ्गार में स्वर और लय का जाल बुन रही है। अपना शृङ्गार भी इस लगन से जिसने कभी नहीं किया होगा।

मन्दोदरी—हाँ जी, जैसे सोने की मूर्तियाँ एक-दूसरे के सहारे खड़ी हों।

रावण—जानकी जितना ही अधिक मेरा निवारण करती है, मैं उसकी ओर खिचा जाता हूँ। कामना का अवरोध असह्य होता है। सुनन्दा ने देख लिया।

सुनन्दा—महाराज और महारानी की जय!

चित्रांगदा—अरे, तो प्रभु आ गए? पैदल···

रावण—मैंने देखा कि महारानी चित्रांगदा पैदल ही गई हैं। पुरुष कठोर होकर सूख जाता यदि रमणी का शील उसे सरल न बनाता।

मन्दोदरी—विदेह-नन्दिनी, यहाँ तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है?

जानकी—महारानी मन्दोदरी के समीप किसी नारी को कष्ट हो तो फिर महारानी का यश क्या रहेगा?

रावण—कृतज्ञ हूँ चित्रांगदा! तुम्हारी कला धन्य है।

चित्रांगदा—मेरी नहीं प्रियतम, ब्रह्मा की कला के कृतज्ञ बनो, जिसने इस एक रचना में अपनी सारी कला लगा दी।

रावण—जानकी देवी, चित्रांगदा ने तुम्हारा अपने हाथों शृङ्गार किया। यह अवसर तुम्हें पंचवटी में न मिलता।

जानकी—माता अपनी पुत्री का शृङ्गार करती है, यह कोई नई

बात नहीं है।

रावण—क्या···क्या···

चित्रांगदा—बेटी जानकी का शृङ्गार मैंने किया देव ! इसका इस तरह से सूखते रहना हमारे लिए, इस सोने की लंका के लिए, अभिशाप होता।

रावण—तो जानकी को बेटी बनाने आई हो यहाँ देवी ?

मन्दोदरी—देवी चित्रांगदा को भय हुआ कि इस सौत से उनकी ओर महाराजा की रुचि न रहेगी।

चित्रांगदा—झूठ है महारानी ! यह चित्रांगदा प्रियतम के लिए प्राण निकाल देगी।

रावण—तो फिर देवी···यह विश्वासघात ?

जानकी—कभी नहीं। वासना से पति को बचा लेना भी पातिव्रत है। अपना शरीर, अपना हृदय, मन की सारी कामनाओं को जिसने सौंप दिया, विश्वासघात वह क्या जानेगी लंकापति ! इन्हें देखकर मुझे माता सुनयना की याद आती रही है। बार-बार मैंने इन्हें माँ कहा। इस बात को ये रोकती भी रहीं, किन्तु प्रकृति का अधिकार कब तक रुकता है !

रावण—प्रकृति का अधिकार···

जानकी—मेरी अवस्था इनकी पुत्री-जैसी नहीं है ? चालीस और अठारह। माता और पुत्री का अनुपात क्या यही नहीं है ? इसे प्रकृति का अधिकार नहीं कहेंगे, महारानी मन्दोदरी !

मन्दोदरी—जानकी, देवजयी लंकापति के लिए देव, यक्ष, किन्नर और नाग-कन्याएँ सदैव कामना करती रहीं। इनकी कामना कभी किसी नारी की ओर नहीं हुई। जिसने इनकी शरण चाही, जिसके मन में इनका अनुराग जागा, उसे इनकी शरण मिली, इनका प्रेम मिला, इनका विभव मिला।

रावण—रुको देवी ! चित्रांगदा तुम्हारी माता की अवस्था की है, जानकी ! किन्तु मैं ? जान लो पुरुष की आयु नहीं, उसका रूप और

तेज देखा जाता है।

जानकी—तो इसका अर्थ यह कि राक्षसराज मुझसे अपना प्रणय-निवेदन करते हैं। आत्म-समर्पण नारी करती है, राक्षसराज ! पुरुष नहीं; और पुरुष जब यह करता है फिर पुरुष नहीं रह जाता। देवजयी रावण किसी नारी से प्रणय का प्रस्ताव करें तब पौरुष धूल में लोटेगा और वीरता विडम्बना होगी।

चित्रांगदा—बेटी !

रावण—विदेह-पुत्री, रावण के अपमान की शक्ति इन्द्र और यम में नहीं है। अपमान करने वाले के कण्ठ पर मेरा यह चन्द्रहास...

जानकी—यह कण्ठ झुका है। मैं रावण के इस चन्द्रहास का स्वागत अपने कण्ठ पर करती हूँ, जिसके आतंक से तीनों लोक काँपते हैं। अपमान नहीं करती मैं। स्वार्थ की ठेस अपमान-सी लगती ही है, इसमें मेरा अपराध नहीं।

चित्रांगदा—क्रोध नहीं प्रभु ! विश्वजयी नारी पर क्रोध करेंगे तो फिर इसके नाक-कान काटकर वहीं पंचवटी में फेंक देते। इतने शील, संयम और इतने धैर्य की...

रावण—नीति और मर्यादा के विचार से आज यह सुनना पड़ा, नहीं तो फिर इसे अशोक वन में न रखकर अपने अन्तःपुर में रखता।

जानकी—महात्मा रावण की इससे कीर्ति बढ़ी। इस अशोक वन में जानकी जीवित है, अन्तःपुर में उसका शव रहता।

रावण—उस वनवासी रामचन्द्र में क्या है ऐसा ? रूप, गुण, विक्रम, धन और विभव, किस बात में वह मेरी समता करेगा ?

जानकी—इसका उत्तर महारानी मन्दोदरी दें, माता चित्रांगदा भी दे सकेंगी। लंकापति से अधिक सुन्दर और बली कोई दूसरा पुरुष इन देवियों ने देखा है ?

रावण—कहीं कोई हो भी तो...

जानकी—होगा भी तो नहीं दिखाई देगा। पति के रूप से बढ़कर

कोई भी दूसरा रूप नारी की आँखों में आता ही नहीं। महारानी मन्दो-दरी और माता चित्राँगदा की आँखों में राक्षसराज सबसे सुन्दर और सबसे मोहक पुरुष हैं। इन्द्रजयी मेघनाद की स्त्री उनसे रूपवान् दूसरा पुरुष न देखती होगी।

रावण—हूँ·· तो फिर राम से अधिक रूपवान् पुरुष तुम्हारे लिए कोई दूसरा नहीं है ?

जानकी—राक्षसराज किसी भी बात में आर्यपुत्र से घटकर हैं, यह अपने मुँह से न कहूँगी। शील और मर्यादा का यही आग्रह है। दो पुरुषों की समता की बात न कहकर उनका जो भेद है···

रावण—और क्या है वह ? इधर देखो, बस एक बार मेरी ओर देखकर कहो।

जानकी—यह लाभ मैं लंकापति को न दूँगी। प्रतापी रावण के प्रणय और प्रेम की सीमा नहीं है। वह एक ही साथ कितनी रमणियों से मिलेगा ? आर्यपुत्र ने केवल इसी एक अभागिनी को अपना प्रणय दिया था। बस इस एक ही दान में उनके पास फिर कुछ न बचा।

रावण—(गम्भीर ध्वनि) क्या एक पुरुष की एक ही स्त्री ?

जानकी—आर्यपुत्र की आँखों में एक ही नारी चढ़ी। उनके अधरों को एक ही नारी के अधर मिले। उनकी बाँहें एक ही नारी के गले में पड़ीं। राक्षसराज के बल का, प्रताप का और प्रेम का अन्त नहीं है। आर्यपुत्र के प्रेम का अन्त तो जान चुकी हूँ, बल और प्रताप की बात मैं जानती नहीं।

रावण—विस्मय है !

जानकी—यह अशोक वन इस विस्मय को कभी मिटने न देगा राक्षसराज !

रीढ़ की हड्डी

श्री जगदीशचन्द्र माथुर

पात्र

उमा—लड़की

रामस्वरूप—लड़की का पिता

प्रेमा—लड़की की माँ

शंकर—लड़का

गोपालप्रसाद—लड़के का बाप

रतन—नौकर

रीढ़ की हड्डी

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है, वह अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं। एक तख़्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख़्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।]

बाबू—अबे धीरे-धीरे चल।...अब तख़्त को उधर मोड़ दे... उधर।...बस, बस।

नौकर—बिछा दूँ साहब ?

बाबू—(**ज़रा तेज़ आवाज़ में**) और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था ? बिछा दूँ साहब !...और यह पसीना किसलिए बहाया है ?

नौकर—(**तख़्त बिछाता है।**) ही-ही-ही।

बाबू—हँसता है !...अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं। कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख़्त क्या चीज़ है ?...उसे सीधा...कर...यों...हाँ, बस।...और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए।...चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही।

(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच मेज़पोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं, कुरसियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती है। गंदुमी रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज़ से ज़ाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त है। उसके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली

हाथ । बाबू साहब रामस्वरूप दोनों की तरफ़ देखते हैं···।]

प्रेमा—मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गई ? एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में···

रामस्वरूप—धोती ?

प्रेमा—हाँ, अभी तो बदलकर आये हो, और फिर न जाने किस लिए···

राम०—लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने !

प्रेमा—यही तो कह रहा था रतन ।

राम०—क्यों वे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या ? मैंने कहा था···धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला···अब तेरे लिए दूसरा दिमाग़ कहाँ से लाऊँ ! उल्लू कहीं का ।

प्रेमा—अच्छा, जा, पूजा वाली कोठरी में लकड़ी के बक्स में ऊपर धुले हुए कपड़े रखे हैं न ? उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला ।

रतन—और दरी ?

प्रेमा—दरी यहीं तो रखी है, कोने में । वह पड़ी तो है ।

राम०—**(दरी उठाते हुए)** औरबीबीजी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी···जल्दी जा ।

(रतन जाता है, पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं ।)

प्रेमा—लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाए पड़ी है ।

राम०—मुँह फुलाए !···और तुम उसकी माँ किस मर्ज़ की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो लोग पकड़ में आये हैं, अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाए तो मुझे दोष मत देना ।

प्रेमा—तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गई । तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रखा है । मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं । अपना ज़माना अच्छा था । 'आ ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली, सच पूछो तो स्त्री-सुबोधिनी में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि

क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई होगी ! और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं—

राम०—ग्रामोफोन बाजा होता है न ?

प्रेमा—क्यों !

राम०—दो तरह का होता है…एक तो आदमी का बनाया हुआ, उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ, उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं ।

प्रेमा—हटो भी । ठठोली ही सूझती रहती है । यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते । अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में !

राम०—तो क्या हुआ ?

प्रेमा—तुम्हीं ने तो कहा था कि ज़रा ठीक-ठाक करके नीचे लाना । आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीम-टाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था, पर उसे तो इन चीज़ों से न जाने किस जनम की नफ़रत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गई । भई मैं तो बाज़ आई तुम्हारी इस लड़की से ।

राम०—न जाने कैसा इसका दिमाग़ है, वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है ।

प्रेमा—अरे मैंने तो पहले ही कहा था, एंट्रेंस ही पास करा देते… लड़की अपने हाथ रहती और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती, पर तुम तो—

राम०—(बात काटकर) चुप, चुप ।…(दरवाज़े में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी ज़बान पर काबू नहीं है । कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने ज़िक्र और ढंग से होगा, मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो । उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी ।

प्रेमा—अच्छा बाबा, मैं न बोलूंगी । जैसी तुम्हारी मरजी हो

करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

राम०—तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है! पान लेकर भेज देना उसे। और नाश्ता तो तैयार है न! **(रतन का आना)** आ गया रतन।...इधर ला, इधर। बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल...पकड़ा तो ज़रा इधर से।

(चद्दर बिछाते हैं।)

प्रेमा—नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज़्यादा खाएँगे नहीं। कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं। फल रखे हैं ही। चाय तैयार है और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन? मक्खन तो आया ही नहीं।

राम०—क्या कहा! मक्खन नहीं आया। तुम्हें भी किस वक्त याद आई! जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाए कि यहाँ का काम करे। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरों के मारे...

प्रेमा—यहाँ का काम कौन ज़्यादा है? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूंगी। एकाध चीज़ खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आएगा। दो आदमी ही तो हैं।

राम०—हाँ, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो उमा से कह देना कि ज़रा क़रीने से आये। ये लोग ज़रा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दक़ियानूसी ख़यालों पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज़्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा—और लड़का?

राम०—बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ, मजबूरी

है। मतलब अपना है वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी···

रतन—(**जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी**) बाबूजी, बाबूजी !

राम०—क्या है ?

रतन—कोई आते हैं।

राम०—(**दरवाज़ से बाहर झांककर जल्दी मुंह अन्दर करते हुए**) अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गए। (**नौकर पर नज़र पड़ते ही**) अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ। गया नहीं मक्खन लाने ?······सब चौपट कर दिया। ······अबे उधर से नहीं, अन्दर के दरवाज़े से जा (**नौकर अन्दर आता है।**) और···तुम जल्दी करो प्रेमा ! उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी।

(**प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ़ आती है। उसकी धोती ज़मीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है।**)

प्रेमा—उँह, यह बाजा नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

राम०—तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ।···जल्दी।

(**प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।**)

राम०—हँ-हँ-हँ। आइए, आइए।···हँ-हँ-हँ।

(**बाबू गोपालप्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आंखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज़ से मालूम होता है कि काफ़ी अनुभवी और फितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरनेवाले नौजवानों में से है। आवाज़ पतली है और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी ख़ासियत है।**)

राम०—(**अपने दोनों हाथ मलते हुए**) हँ-हँ, इधर तशरीफ लाइए इधर···

(**बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है।**)

राम०—यह बेंत !···लाइए मुझे दीजिए। **(कोने में रख देते हैं। सब बैठते हैं)** हँ-हँ···मकान ढूंढने में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई ?

गोपाल०—**(खखारकर)** नहीं। तांगे वाला जानता था।···और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं ?

राम०—हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी...

गोपाल०—अरे नहीं साहब, जैसा मेरा काम वैसा ही आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है, बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

राम०—हँ-हँ-हँ। यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके···हँ-हँ···सेवक ही हैं···हँ-हँ ! **(थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर)** और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिन की छुट्टियाँ हैं ?

शंकर—जी, कॉलेज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

राम०—तो आपके कोर्स खत्म होने में तो अब साल-भर रहा होगा ?

शंकर—जी, यही कोई साल-दो साल।

राम०—साल-दो साल ?

शंकर—हँ-हँ-हँ···जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ···

गोपाल०—बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बतायें, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियां उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख।

राम०—कचौड़ियां भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गोपाल०—जनाव, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी और अकेले दो आने हजम करने की ताकत थी, और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में। तब न कोई वॉलीवाल

जानता था, न टेनिस, न बैडमिन्टन। बस कभी हॉकी या क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे, मगर मजाल कोई कह जाए कि यह लड़का कमज़ोर है।

(शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरत हैं।)

राम०—जी हाँ, जी हाँ, उस ज़माने की बात ही दूसरी थी, हें-हें।

गोपाल०—**(जोशीली आवाज़ में)** और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुरसी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घंटे। जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अँग्रेज़ी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबला नहीं कर सकते।

राम०—जी हाँ, जी हाँ, यह तो है ही।

गोपाल०—माफ़ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है।

राम०—हँ-हँ-हँ···जी हाँ वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना, हँ-हँ-हँ।

(शंकर भी हीं-हीं करता है।)

गोपाल०—**(एक साथ ही अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए)** अच्छा, तो साहब, फिर, 'बिज़नेस' की बातचीत हो जाए।

राम०—**(चौंककर)** बिज़नेस !···बिज़···**(समझकर)** ओह··· अच्छा, अच्छा, लेकिन ज़रा नाश्ता तो कर लीजिए।

(उठते हैं।)

गोपाल०—यह सब आप क्या तकल्लुफ करते हैं ?

राम०—हँ···हँ···हँ। तकल्लुफ किस बात का ? हँ···हँ ? यह तो मेरी बड़ी तक़दीर है कि आप मेरे यहां तशरीफ़ लाए, वरना मैं किस क़ाबिल हूँ। हँ···हँ···माफ कीजिएगा ज़रा, अभी हाज़िर हुआ।

(अन्दर जाते हैं।)

गोपाल०—**(थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में)** आदमी तो भला है,

मकान-बकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर—जी…

(कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है।)

गोपाल०—क्यों, क्या हुआ ?

शंकर—कुछ नहीं।

गोपाल०—झुककर क्यों बैठते हो ? ब्याह तय करने आए हो, कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'बेकबोन'…

(इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लिए हुए। मेज़ पर रख देते हैं।)

गोपाल०—आखिर आप माने नहीं।

राम०—**(चाय प्याले में डालते हुए)** हँ-हँ-हँ। आपको विलायती चाय पसन्द है या हिन्दुस्तानी ?

गोपाल०—नहीं, नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए, और ज़रा चीनी ज़्यादा डालिएगा। मुझे तो भाई यह नया फ़ैशन पसन्द नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है और फिर चीनी भी नाम को डाली जाए तो ज़ायका क्या रहेगा ?

राम०—हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं।

(प्याला पकड़ाते हैं।)

शंकर—**(खखारकर)** सुना है, सरकार अब चीनी ज़्यादा लेने वालों पर 'टैक्स' लगाएगी।

गोपाल०—**(चाय पीते हुए)** हूँ, सरकार जो चाहे सो कर ले, पर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

राम०—**(शंकर को प्याला पकड़ाते हुए)** वह क्या ?

गोपाल०—खूबसूरती पर टैक्स ! **(रामस्वरूप और शंकर हंस पड़ते हैं।)** मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि कि देने वाले चूं भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाए

कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैण्डर्ड' के माफ़िक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

राम०—(**ज़ोर से हँसते हुए**) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के ज़माने में तो यह कभी उठता भी न था। (**तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ़ बढ़ाते हैं।**) लीजिए।

गोपाल०—(**समोसा उठाते हुए**) कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

राम०—(**शंकर की तरफ मुखातिब होकर**) आपका क्या खयाल है शंकर बाबू ?

शंकर—किस मामले में ?

राम०—यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपाल०—(**बीच में ही**) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आप से पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत ज़रूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाए, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम-आप मान भी जाएँ, मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है ?

राम०—जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपाल०—देखना क्या ? जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

राम०—हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ !

गोपाल०—और जायचा (**जन्म-पत्र**) तो मिल ही गया होगा ?

राम०—जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है ? ठाकुरजी के चरणों में रख दिया, बस खुद-ब-खुद मिला हुआ समझिए।

गोपाल०—यह तो ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक। (**थोड़ी देर रुककर**) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो ग़लत है न ?

राम०—(**चौंककर**) क्या ?

गोपाल०—यही पढ़ाई–लिखाई के बारे में।···जी हाँ, साफ़ बात है साहब, हमें ज़्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को ! बस हद-से-हद मैं ट्रिक पास होनी चाहिए—क्यों शंकर ?

शंकर—जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं ।

राम०—नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता ।

गोपाल०—और क्या साहब, देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए, इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अँग्रेज़ी अखबार पढ़ने लगीं और 'पॉलिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब मोर के पंख होते हैं मोरनी के नहीं; शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं ।

राम०—जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं। ···हँ···हँ···हँ !

(शंकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं ।)

गोपाल०—हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ़ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी चीज़ों में से एक है।

राम०—(**शंकर से**) चाय और लीजिए ।

शंकर—धन्यवाद, पी चुका ।

राम०—(**गोपालप्रसाद से**) आप ?

गोपाल०—बस, साहब, अब तो खत्म ही कीजिए.

राम०—आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं। क्या बताएँ, वह मक्खन—

गोपाल०—नाश्ता ही तो करना था साहब. कोई पेट तो भरना था

नहीं। और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

राम०—हँ…हँ। (**मेज़ को एक तरफ़ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाज़े की तरफ़ मुँह करके ज़रा ज़ोर से**) अरे, ज़रा पान भिजवा देना…!…सिगरेट मँगवाऊँ?

गोपाल०—जी नहीं।

(**पान की तश्तरी हाथों में लिये उमा आती है। सादगी के कपड़े, गरदन झुकी हुई। बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे तक रहे हैं।**)

राम०—हँ…हँ…!…यही, हँ….हँ, आपकी लड़की है। लाओ बेटी, पान मुझे दो।

(**उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते हैं।**)

गोपालप्रसाद और शंकर—(**एक साथ**)—चश्मा!!

राम०—(**ज़रा सकपकाकर**) जी, वह तो…वह…पिछले महीने इसकी आँखें दुखनी आ गई थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपाल०—पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ?

राम०—नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज़ किया न!

गोपाल०—हूँ। (**सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में**) बैठो बेटी!

राम०—वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख़्त पर, अपने बाजे-वाजे के पास।

(**उमा बैठती है।**)

गोपाल०—चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है।…हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है?

राम०—जी हाँ, सितार भी और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहां तक कि उसका मस्तक उठ जाता है और उसकी आंखें शंकर की झेंपती-सी आंखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।)

राम०—क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा !

गोपाल०—नहीं-नहीं साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

(उमा सितार रखकर अन्दर जाने को उठती है।)

गोपाल०—अभी ठहरो, बेटी !

राम०— थोड़ा और बैठी रहो, उमा ! **(उमा बैठती है।)**

गोपाल०—**(उमा से)** तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी सीखी है ?

उमा०—(चुप)

राम०—हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। यह जो तस्वीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है; और वह उस दीवार पर भी।

गोपाल०—हूँ ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

राम०—सिलाई तो सारे घर की इसी के ज़िम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीज़ें भी। हँ…हँ…हँ।

गोपाल०—ठीक।…लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं ?

(उमा चुप है। रामस्वरूप इशारे के लिए खांसते हैं। लेकिन उमा चुप है उसी तरह गरदन झुकाए। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।)

राम०—जवाब दो, उमा ! **(गोपाल० से)** हँ-हँ, ज़रा शरमाती है, इनाम तो इसने…

गोपाल०—(**ज़रा रूखी आवाज़ में**) ज़रा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

राम०—उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं? जवाब दो न।

उमा— (**हल्की लेकिन मज़बूत आवाज़ में**) क्या जवाब दूं बाबूजी? जब कुरसी-मेज़ बिकती है तब दुकानदार कुरसी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ़ खरीदार को दिखला देता है। पसन्द आ गई तो अच्छा है, वरना…

राम०—(**चौंककर खड़े हो जाते हैं।**) उमा, उमा!

उमा—अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी!…ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आये हैं, इनसे पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनको चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं, जिन्हें क़साई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते हैं?

गोपाल०—(**ताव में आकर**) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज़्ज़त उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा—(**तेज़ आवाज़ में**) जी हाँ, और हमारी बेइज़्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और ज़रा अपने इन साहबज़ादे से पूछिए कि अभी पिछली फ़रवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे और वहाँ से कैसे भगाये गए थे।

शंकर—बाबूजी, चलिए।

गोपाल०—लड़कियों के होस्टल में?…क्या तुम कॉलेज में पढ़ी हो?

(**रामस्वरूप चुप**)

उमा—जी हाँ, मैं कॉलेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँककर कायरता दिखाई। मुझे अपनी इज़्ज़त—अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

राम०—उमा, उमा!…!

गोपाल०—(**खड़े होकर गुस्से में**) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा की। आपकी लड़की बी० ए० पास और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए मेरी छड़ी कहाँ है? मैं चलता हूँ। (**छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं।**) बी० ए० पास! उफ्फोह! गज़ब हो जाता! झूठ का भी कुछ ठिकाना है! आओ बेटे, चलो...

(**दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।**)

उमा—जी हाँ, जाइए, ज़रूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर ज़रा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं—यानी बैकबोन, बैकबोन—

(**बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुरसी पर धम-से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है, लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।**)

प्रेमा—उमा, उमा...रो रही है?

(**यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।**)

रतन—बाबूजी, मक्खन।

(**सब रतन की तरफ़ देखते हैं और परदा गिरता है।**)

अशोक

(कलिंग-विजय के बाद की एक रात)

श्री विष्णु प्रभाकर

पात्र

अशोक—भारत-सम्राट्

राधागुप्त—अशोक का महामात्य

महेन्द्र—अशोक का छोटा भाई

संघमित्रा—अशोक की छोटी बहन

कुमार—कलिंग का युवराज

उपगुप्त—बौद्ध भिक्षु

अशोक

[स्थान—कलिंग की युद्ध-भूमि में दूर-दूर तक फैले शिविर और उनपर छाई धूमिल सन्ध्या। स्थान-स्थान पर सैनिक पहरा दे रहे हैं। स्टेज पर सम्राट् अशोक के शिविर का आन्तरिक दृश्य। इस समय सम्राट् अशोक प्रकोष्ठ में इधर-उधर घूम रहे हैं। पृष्ठ-भूमि में सान्ध्य-गीत की ध्वनि उठती है। सम्राट् की मुख-छवि अत्यन्त गम्भीर है, गति में उग्रता है। वे अकेले हैं और रह-रहकर शिविर-द्वार की ओर देख लेते हैं; तभी शीघ्रता से महामात्य राधागुप्त वहाँ प्रवेश करते हैं।]

राधागुप्त—सम्राट् की जय हो ! राजकुमार बन्दी हो चुके हैं।

अशोक—(**चौंककर**)···कलिंग के राजकुमार बन्दी हो चुके हैं ? सच कहते हो महामात्य ?

राधा०—आज्ञा हो तो राजकुमार को सम्राट् के चरणों में उपस्थित किया जाए ?

अशोक—(**अनमना-सा**)···अभी ठहरो। पहले मुझे यह बताओ कि क्या अब युद्ध की आवश्यकता नहीं रही ?

राधा०—हाँ देव, कलिंग-विजय पूर्ण हुई।

अशोक—(उसी तरह)···कलिंग-विजय पूर्ण हुई। अब शस्त्रों की झंकार सुनने को नहीं मिलेगी; अब आहतों की चीत्कार बन्द हो जाएगी।

राधा०—देव ! अब कलिंग में कौन बचा है जो शस्त्रों की झंकार सुनेगा ! जो वृद्ध, वनिताएँ या बालक वहाँ शेष हैं, वे न सुन सकते हैं, न बोल सकते हैं। वे केवल अपलक दृष्टि से शून्य में ताकते रहते हैं। उनसे बातें करो तो कुछ इस प्रकार देखते हैं कि बोलने वाला स्वयं पानी-

पानी हो जाता है। हाँ वहाँ केवल एक व्यक्ति है जो देखता भी है और बोलता भी है।

अशोक—वह क्या बोलता है ?

राधा०—यह तो मैं नहीं बता सकूँगा, देव !

अशोक—(**सहसा तेज़ होकर**)...महामात्य, जानते हो तुम किससे बात कर रहे हो ?

राधा०—जानता हूँ, भारत-सम्राट् !

अशोक—तब ?

राधा०—सम्राट् चाहें तो वह बात स्वयं उसी के मुँह से सुन सकते हैं।

अशोक—तो तुम उस वाचाल को पकड़ लाए हो ?

राधा०—मैंने अभी निवेदन किया था, देव ! कलिंग-कुमार बन्दी हो चुके हैं।

अशोक—कलिंग-कुमार, कुमार बन्दी होकर भी बोलना जानते हैं।

राधा०—तब से तो वे कुछ अधिक बोलने लगे हैं, सम्राट् !

अशोक—(**ओंठ चबाकर**)...वे शायद भारत-सम्राट् चंडा-शोक के स्वभाव को नहीं जानते।

राधा०—देव ! कुमार मगध में हमारे अतिथि रहे हैं। आखेट के समय उनके हस्त-लाघव की सम्राट् ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और देवी संघमित्रा...

अशोक—(**ज़ोर से**)...महामात्य !

राधा०—अपराध क्षमा हो देव ! देवी संघमित्रा आज भी कुमार की प्रशंसक है। वह कहती थी, कुमार के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक वीर पुरुष के साथ होता है।

अशोक—महामात्य, हमें देवी संघमित्रा के परामर्श की आवश्यकता नहीं है। हम जानते हैं, हमें कब क्या करना होगा। तुम बन्दी को उपस्थित करो। हम उसकी बातें सुनेंगे।

राधा०—जो आज्ञा देव !

(राधागुप्त का गमन, संघमित्रा का प्रवेश)

संघमित्रा—भइया !

अशोक—कौन संघमित्रा ! तुम इस समय यहाँ क्यों आयीं ?

संघमित्रा—सम्राट् से निवेदन करने कि गायिका आ गई है। आज्ञा हो तो उपस्थित करूँ ?

अशोक—इस समय नहीं, संघमित्रा ! मुझे कुछ आवश्यक काम है।

संघमित्रा—क्या मैं जान सकती हूँ, सम्राट् को इस सन्ध्या-काल में क्या काम है ?

अशोक—तुम काम जानना चाहती हो—तुम काम जानना चाहती हो। **(एकदम)**…नहीं संघमित्रा, मैं तुम्हें कुछ नहीं बता सकूँगा।

संघमित्रा—**(हंसकर)**…बताने की कोई आवश्यकता नहीं सम्राट् ! मैं जानती हूँ, आप कलिंग-कुमार के भाग्य का निर्णय करने जा रहे हैं। मैं आपसे केवल इतना निवेदन करूँगी कि आज आपके शौर्य की परीक्षा है।

अशोक—भारत-सम्राट् चंडाशोक का शौर्य विश्व-विदित है। कुमार को मेरे चरणों में सिर झुकाना ही होगा।

संघमित्रा—और न झुकाया तो !

अशोक—तो यह तलवार उसे झुका लेगी !…

(तलवार को म्यान में बजाता है।)

संघमित्रा **(काँपकर)**…भइया !

अशोक—**(हँसकर)**…काँप गई। क्या तुम्हें शस्त्रों से डर लगने लगा है ?

संघमित्रा—नहीं, मैं शस्त्रों से नहीं डरती, सम्राट् !

अशोक—तो कुमार की मृत्यु से डरती हो ?

संघमित्रा—नहीं सम्राट्, मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।

अशोक—तो फिर किस बात की चिन्ता है ?

संघमित्रा—मुझे सम्राट् की चिन्ता है। सम्राट् गलती से शौर्य को तलवार में समझ बैठे हैं।

अशोक—तो और वह कहाँ होता है ?

संघमित्रा—हृदय में, सम्राट् ! हृदय की विशालता और उदारता का नाम शौर्य है।

अशोक—(**अनमना-सा**)···हृदय की विशालता और उदारता··· (**सहसा अट्टहास**) हृदय की विशालता और उदारता। जान पड़ता है कलिंग के उस भिक्षु का प्रभाव तुम पर भी पड़ा है, संघमित्रा ! आखिर तो तुम नारी हो और नारी की अविरोध शक्ति बड़ी दुर्बल होती है। लेकिन याद रखो, अशोक बौद्धों की इस दुर्बल नीति के बल पर भारत का सम्राट् नहीं बना है।

संघमित्रा—लेकिन सम्राट्···(**किसी के आने का स्वर**)···

अशोक—(**शीघ्रता से**) ···तुम अब जा सकती हो, संघमित्रा !

संघमित्रा—भइया !

अशोक—जाओ संघमित्रा ! भारत सम्राट् अशोक तुम्हें जाने की आज्ञा देता है।

संघमित्रा—(**जाती हुई**) जा रही हूँ, सम्राट् ! पर भूलिए नहीं, हृदय की विशालता का नाम ही शौर्य है।

(शब्द दूर जाते हैं। **पद-चाप पास आते हैं। राधागुप्त का कलिंग-कुमार के साथ प्रवेश। कुमार को दो सैनिकों ने पकड़ा हुआ है। अन्दर आते ही वे कुछ हटकर खड़े हो जाते हैं।**)

राधा०—सम्राट् की जय हो, कलिंग-कुमार उपस्थित है।

अशोक—(**कठोर स्वर में**)···महामात्य, कलिंग का अब कोई कुमार नहीं है। यह एक साधारण बन्दी है।

कुमार—अशोक, अपनी वास्तविकत अवस्था में सभी साधारण होते हैं। तुम भी अशोक पहले हो, सम्राट् पीछे।

अशोक—(**कड़ककर**)···बन्दी, जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो ?

कुमार—जानता क्यों नहीं ? मैं मगध के हत्यारे सम्राट् चंडाशोक से बातें कर रहा हूँ—उस चंडाशोक से जिसने माँ वसुन्धरा को अपने लाखों पुत्रों का रक्त पीने को विवश किया है।

अशोक—(**क्रुद्ध**···) बन्दी, तुम वाचाल ही नहीं, धृष्ट भी हो। इस धृष्टता का एक ही प्रतिकार मेरे पास है और वह है यह कटार। (**कटार दिखाता है।**)

कुमार—हत्यारे के पास कटार के अतिरिक्त भी और कुछ होता है क्या ?

अशोक—बन्दी, मैं अभी तुम्हारा सिर काट सकता हूँ।

कुमार—जो धरती माता अपने लाखों पुत्रों का रक्त पी चुकी है वह अपने एक और पुत्र का रक्त पियेगी तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, सम्राट् !

राधा०—होश में आकर बातें करो कुमार !

कुमार—तुम्हें भी क्रोध आ गया महामात्य ! आखिर हो तो विष्णुगुप्त चाणक्य के शिष्य ही। लेकिन सुन लो राधागुप्त, तुम्हारे इस हत्यारे सम्राट् को एक दिन इस रक्त-प्लावन का बदला चुकाना होगा। उसका अपना हृदय उसकी भर्त्सना करेगा।

अशोक—(**अट्टहास**)···वही उपगुप्त का स्वर, वही बौद्ध-भिक्षु की वाणी। बौद्धों की दुर्बल नीति के कारण ही तुम्हारा पतन हुआ है, बन्दी !

कुमार—मेरा पतन नहीं हुआ, अशोक ! पतन तुम्हारा हुआ है।

अशोक—मेरा पतन ! भारत-सम्राट् का पतन, असम्भव बन्दी, असम्भव···

कुमार—असम्भव नहीं अशोक ! वह पूर्ण सम्भव हो चुका है। लक्ष-लक्ष मानवों का रक्त तुम्हारे पतन की घोषणा कर रहा है, लक्ष-लक्ष घायलों की कराह में तुम्हारे पतन का स्वर गूंज रहा है; ललनाओं की सूनी माँगों में, माताओं की खाली गोदियों में, शिशुओं की निरीह

दृष्टि में, सब कहीं तुम्हारे पतन की कहानी अंकित है। कलिंग के उजड़े हुए ग्राम, वीरान प्रदेश, ये सब तुम्हारे पतन के साक्षी हैं। अशोक, तुम जीतकर भी हार गए हो, कलिंग मिटकर अमर हो गया है।

अशोक—अशोक हार गया है, कलिंग अमर हो गया है। (**अट्टहास**)··

कुमार—हँस लो, जितना हँस सको हँस लो। मगध में तुम्हें यह हँसी नहीं मिलेगी। वहाँ के मार्ग रक्त से रंगे पड़े हैं; वहाँ तुम्हारे सिंहासन के चारों ओर लाशों के ढेर लगे हुए हैं; वहाँ तुम्हारे बन्दीघरों से लाखों वन्दियों की उठती हुई कराह ने सारे वातावरण को विषाक्त बना दिया है। अशोक, तुमने कलिंग की धरती को जीता है उसकी आत्मा को नहीं। धरती की जीत को क्या तुम जीत कहते हो।

राधा०—जीत नहीं तो और क्या है? आत्मा को किसने देखा है? शरीर सत्य है, उसी की जय सच्ची जय है। कुमार, तुम्हारे इस शब्द-जाल से तुम्हारी पराजय जय में नहीं पलट सकती।

कुमार—मेरी पराजय! मुझे किसने पराजित किया है?

अशोक—क्या? क्या तुम अपनी पराजय नहीं स्वीकार करते?

कुमार—कलिंग के कुमार के शरीर में जब तक प्राण हैं तब तक उसे कोई पराजित नहीं कर सकता।

अशोक—(**तेजी से**)···तुम मुझे प्रणाम नहीं करोगे?

कुमार—कलिंग का कुमार कलिंग के अतिरिक्त और किसी सिंहासन के सामने झुकना नहीं चाहता।

अशोक—लेकिन कलिंग का सिंहासन धूल में मिल चुका है। कलिंग का स्वामी मैं हूँ।

कुमार—कलिंग-कुमार के रहते कलिंग का स्वामी कोई नहीं हो सकता, अशोक!

अशोक—होने का प्रश्न नहीं है, कलिंग का राजमुकुट मेरी ठोकरों में लोट रहा है।

कुमार—ठोकर लगाना तो बहुत दूर की बात है, उसकी ओर दृष्टि

उठाने वाले की आँखें निकाल ली जाती हैं, सम्राट् !

राधा०—बस करो बन्दी, नहीं तो…

कुमार—नहीं तो तुम्हारा सिर काट लिया जाएगा। (**अट्टहास**)… तुम लोगों में सिर काट लेने से अधिक कुछ करने की शक्ति है ही कहाँ ? तुम कापुरुष हो।

अशोक—महामात्य, बन्दी से कहो वह व्यर्थ का वितण्डावाद न उठाकर मेरी अधीनता स्वीकार करे। अशोक वीर पुरुषों को क्षमा करना जानता है।

कुमार—लेकिन वीरपुरुष किसी की क्षमा ग्रहण करना नहीं जानते। विश्वास रखो, कलिंग-कुमार जीते-जी वीरता को कलंकित नहीं करेगा।

अशोक—महामात्य, बन्दी से पूछो क्या यह उसका अन्तिम निर्णय है ?

कुमार—वीर दो बार नहीं सोचा करते।

अशोक—तब महामात्य, बन्दी को ले जाओ और चण्डगिरि से कह दो, उषा की प्रथम किरण के साथ इसका सिर मेरे चरणों में लोटेगा।

राधा०—सम्राट् की आज्ञा का पालन होगा, देव !

कुमार—बस, यही तुम्हारी वीरता है; यही तुम्हारा शौर्य है ? इसी बूते पर सम्राट् बने हो, एक बन्दी का सिर भी नहीं झुका सके। खोपड़ियों को ठुकराने को तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं, लेकिन वह मानवों का मार्ग नहीं है।

राधा०—बस कुमार, सम्राट् को उपदेश देने की धृष्टता मत करो। सैनिक, बन्दी को ले चलो।

(सबका गमन। अशोक कुछ क्षण उन्हें जाते देखता है, फिर स्वगत बोलता है।)

अशोक—कितना धृष्ट है, मृत्यु जितनी समीप आती है, वाचालता उतनी ही बढ़ती है, साहस उतना ही सिर उठाता है, भय तो जैसे छू नहीं गया है। (**हंसकर**) लेकिन अशोक को किसने जीता है, अशोक की

शक्ति से कौन बचा है ! सारा भारत चण्डाशोक, क्रूरकर्मी, बली पराक्रमी चण्डाशोक को जानता है। लेकिन वह कहता था—एक बन्दी का सिर नहीं झुका सके, खोपड़ियों को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं, नहीं···नहीं···यह सब उसका शब्द-जाल था, लेकिन···लेकिन आहतों का चीत्कार···बन्दियों की करुण पुकार···हृदय में कहीं पीड़ा होती है, नेत्र मुँदे जाते हैं। ओह ! मुझे क्या हो रहा है, यह मुझे क्या···(**संघमित्रा का प्रवेश**)

संघमित्रा—सम्राट् की जय हो !

अशोक—(**चौंककर**) कौन ? संघमित्रा !

संघमित्रा—हाँ सम्राट् ! कुमार के भाग्य का निर्णय कर चुके ?

अशोक—(**सँभलकर**) तुम उस बन्दी की बात कर रही हो। अच्छा हुआ तुम्हारा विवाह उसके साथ नहीं हुआ। वह तो बड़ा धृष्ट निकला, संघमित्रा ! उसने मेरी अधीनता स्वीकार नहीं की।

संघमित्रा—अधीनता को उसके पास रखा ही क्या है ! सारा देश श्मशान बन चुका है।

अशोक—तुम उसका देश देखने गयी थीं, संघमित्रा ?

संघमित्रा—जाना ही पड़ता है। आपके शूरवीर सैनिक घरों से निकाल-निकालकर कलिंग-निवासियों का वध करते थे।

अशोक—उन्हें यही आज्ञा थी।

संघमित्रा—सम्राट् के सैनिक आज्ञाकारी हैं, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चों और औरतों को भी वे घर में नहीं छोड़ते थे ! उन्हें बाहर निकालकर घरों में आग लगा देते थे। इसलिए कलिंग के कुमार ने ग़लती की जो श्मशान के लिए सिर दिया !

अशोक—तो तुम जानती हो कि मैंने बन्दी का सिर काट लेने की आज्ञा दी है।

संघमित्रा—जानती तो नहीं थी, पर कल्पना कर सकती थी। बचपन से आपको पहचानती हूँ। राजगद्दी भी तो आपने बड़े भैया से सिर

का सौदा करके जीती है, औरों की भाँति विरासत में नहीं पाई। विरासत एक प्रकार का दान है और दान लेना वीरता का अपमान है।

अशोक—(**सहसा धीमा स्वर**) गद्दी की तो यहाँ कोई चर्चा नहीं थी, संघमित्रा !

संघमित्रा—गद्दी तो गौण है भैया, चर्चा आपके स्वभाव की है। कुमार को प्राण-दण्ड देकर आपने राज-सत्ता की ही नहीं, अपने स्वभाव की मर्यादा की भी रक्षा की है।

अशोक—(**तेज स्वर**) स्वभाव की मर्यादा, संघमित्रा ! अशोक शक्ति में विश्वास रखता है। दया और करुणा को वह साम्राज्य का शत्रु मानता है। सुसीम पिता के राज्य-काल में भी तक्षशिला का विद्रोह शान्त नहीं कर सका। वह बौद्धों की दुर्बल नीति का पक्षपाती था, वह मानवता की पुकार-जैसी काल्पनिक भावनाओं में विश्वास करता था।

संघमित्रा—निःसन्देह बड़े भैया सम्राट् होने के लिए नहीं थे। गद्दी पर बैठते तो कैसे मौर्यों की पताका चारों दिशाओं में फहराती, कैसे देश 'विजित' होते, कैसे धरती माता अपनी सन्तान का रक्त पीती, कैसे आकाश मानव-चीत्कार का संगीत सुनता ?

अशोक—तुम जानती हो कि चीत्कार में भी संगीत होता है।

संघमित्रा—होता है सम्राट्, उसी को सुनकर तो मनुष्य जीवन से डरना सीखता है।

अशोक—(**हँसकर**) तुम कैसी बातें कर रही हो संघमित्रा, जो जीवन से डरेगा वह जियेगा कैसे ?

संघमित्रा—जैसे सम्राट् जीते हैं, जैसे सम्राट् के सैनिक जीते हैं।

अशोक—(**धीरे से**) जैसे सम्राट् जीते हैं, यानी जैसे मैं जीता हूँ ?

संघमित्रा—हाँ सम्राट् !

अशोक—संघमित्रा, तुम भी उन बौद्धों से हेल-मेल बढ़ाने लगी हो, तभी यह रहस्यमयी भाषा बोलती हो। बन्दी भी कुछ इसी प्रकार कहता था।

संघमित्रा—बन्दी क्या कहता था सम्राट् ?

अशोक—वह कहता था कि तुम कैसे वीर हो, जो एक बन्दी का सिर भी नहीं झुका सके। खोपड़ियों को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं। (**खोखली हँसी**) यह सब वाग्जाल है। भुज-बल ही सबसे बड़ा शौर्य है। हृदय और आत्मा की बातें नारी और भिक्षुओं के लिए हैं।

संघमित्रा—(**हँसकर**) धन्यवाद भैया! नारी को आपने भिक्षुओं के समकक्ष माना, लेकिन एक बात पूछूँ सम्राट् ?

अशोक—पूछो संघमित्रा! बात पूछने का तो आज मेरा भी मन करता है।

संघमित्रा—सच ? तो आप ही पूछिए। मैं तो सदा ही आपको तंग करती रहती हूँ। आप क्या पूछना चाहते हैं, सम्राट् ?

अशोक—कुछ नहीं, संघमित्रा!

संघमित्रा—(**ज़ोर देकर**) पूछिए सम्राट्!

अशोक—पूछूँ ?

संघमित्रा—अगर मुझे किसी योग्य समझते हो तो पूछो।

अशोक—नहीं, नहीं, यह बात नहीं है। मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी का वध करने की कोई और रीति भी होती है ?

संघमित्रा—समझी नहीं सम्राट्! और रीति से आपका क्या आशय है ?

अशोक—जिसका वध करना हो उसके प्राण न निकलें पर वह मर जाए।

संघमित्रा—ऐसी रीति नहीं भैया, मैं तो ऐसी रीति नहीं जानती। शस्त्र बाँधने वाला कोई जानता भी न होगा।

अशोक—अच्छा तो जाने दो···लेकिन हाँ, संघमित्रा, शस्त्र बाँधना बुरा होता है क्या ?

संघमित्रा—नहीं तो, आपको अचानक यह क्या होने लगा ? आप

ऐसे प्रश्न क्यों पूछते हैं ?

अशोक—(**काँपकर**) न जाने···न जाने (**दृढ़ होकर**) नहीं, नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ। ऐसे ही कुछ याद आ गया था। तुम किसी से कुछ कहना मत। हाँ, अब हम शीघ्र सिंहल-विजय के लिए चलेंगे।

संघमित्रा—सच ?

अशोक—हां।

संघमित्रा—मैं भी चलूंगी।

अशोक—अवश्य चलना। वह बहुत सुन्दर देश है।

संघमित्रा—और हम सौन्दर्य के उपासक हैं, उसे चाट जाने वाले। (**हँसकर**) अच्छा मैं गायिका को बुला लाऊँ, आप थक गए होंगे।

अशोक—नहीं, नहीं। संघमित्रा, मैं गाना सुनना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ···मैं चाहता हूँ···

संघमित्रा—(**सहसा रुककर**) सम्राट् क्या चाहते हैं ?

अशोक—कुछ नहीं संघमित्रा ! मैं कुछ नहीं चाहता। लेकिन··· लेकिन मुझे कुछ याद आ रहा है। मुझे युद्ध-भूमि का दृश्य दिखाई दे रहा है। मुझे घायलों का चीत्कार सुनाई दे रहा है। मेरे कानों में बन्दियों की करुण-पुकार गूंज रही है। (**उत्तेजित हो जाता है।**) संघ-मित्रा···संघमित्रा ! युद्ध में इतने आदमी मरते क्यों हैं ? युद्ध होते क्यों हैं ?

संघमित्रा—भैया···आपको क्या हो गया है ? आप अस्वस्थ हैं, आपका मन दुखी है, आपको संगीत की आवश्यकता है। मैं अभी गायिका को भेजती हूँ।

(**संघमित्रा का गमन**)

अशोक—(**उसी तरह अनमना-सा**) क्यों इतने आदमी मरते हैं ? क्यों इतना रक्त बहता है ? संघमित्रा, बन्दी कहता था कि मैंने धरती माता को अपने बेटों का रक्त पीने को विवश किया। अपने बेटों का रक्त ! क्या संघमित्रा, संघमित्रा···(**सँभलकर देखता है।**) गयी···महा-

मात्य कहते थे, यह कलिंग-कुमार की बड़ी प्रशंसा कर रही थी। वह है भी अनुपम वीर। उस दिन आखेट में उसका हस्तलाघव देखा था; आज इस महानाश में उसका अदम्य साहस देखा। मैं चाहता तो उसी क्षण उसका सिर काट लेता। लेकिन···लेकिन, साहसी मनुष्य के सामने मौत भी काँप जाती है। उसका साहस भी अंगद के पैर के समान मेरे क्रोध के सामने डटा रहा। यही नहीं, उसने मुझे चुनौती भी दी, **(स्वर गूंजता है।)** "बस एक बन्दी का सिर भी नहीं झुका सके। खोपड़ियों को ठुक-राने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं।"···मैं एक बन्दी का सिर नहीं झुका सका, एक बन्दी का, मैं, जिसके इंगित पर लक्ष-लक्ष सिर पैर को चूमते हैं, जिसकी भृकुटि पर काल काँप उठता है, वह एक सिर नहीं झुका सका ? क्या सचमुच मैं इतना निर्बल हूँ ? क्या मेरी शक्ति कायर की शक्ति है ? कायर, हाँ। गीदड़ कायर ही होता है। कुमार ने मुझे गीदड़ कहा—खोपड़ियों को ठुकराने वाला गीदड़ ! मैं खोपड़ियों को ठुकराता हूँ, मैं खोपड़ियों को ठुकराता हूँ···**(गहरा उच्छ्-वास)** मैं खोपड़ियों को ठुकराता हूँ। ठीक तो है, मैं इसका सिर नहीं झुका सका। संघमित्रा भी तो कहती थी, शौर्य तलवार में नहीं होता··· शायद वह ठीक कहती है, तलवार में शौर्य नहीं होता। तभी तो मैं जीते-जी उसका सिर नहीं झुका सका। अब उसका सिर काटकर उससे बदला लेना चाहता हूँ। सिर काटकर···उसके सिर को ठुकराकर···गीदड़ भी निर्जीव सिर को ठुकराता है, मैं गीदड़ हूँ। मैं···हाँ, मैं गीदड़ हूँ। मैं एक बन्दी का सिर नहीं झुका सकता। **(राधागुप्त का प्रवेश)**

अशोक—**(चौंककर)** कौन, महामात्य ?

राधा०—सम्राट् की जय हो, एक बौद्ध भिक्षु आपसे मिलना चाहते

अशोक—**(नम्र स्वर)** बौद्ध भिक्षु को अभी रहने दो। मैं तुमसे पूछता हूँ, कुमार यही कहता था न कि मैं एक बन्दी का भी सिर नहीं झुका सका ?

राधा०—देव, बन्दी का सिर कुछ ही घण्टों में लौटेगा।

अशोक—यही तो, वह यही तो कहता था। खोपड़ियों को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं। गीदड़ कायर होते हैं। आमात्य, कायर पुरुष को ही तो गीदड़ कहते हैं।

राधा०—(धीरे से) सम्राट्, आप का चित्त ठीक नहीं है। आज क्या कोई गायिका नहीं आयी ?

अशोक—राधागुप्त, संघमित्रा कहती थी, वीर पुरुष जिस संगीत को सुना करते हैं वह घायलों की चीत्कार और बन्दियों की करुण पुकार से उठता है। लेकिन महामात्य, मैं तुमसे पूछ रहा था, क्या मैं बन्दी का सिर नहीं झुका सकता ? क्या उसका सिर काटना ही होगा ?

राधा०—जो भारत-सम्राट् की आज्ञा नहीं मानता, उसका सिर काट लेना ही उचित है।

अशोक—लेकिन महामात्य, आज्ञा तो वह फिर भी नहीं मान सकेगा।

राधा०—सम्राट्, यदि आज्ञा मानता, तो उसे दण्ड क्यों मिलता ?

अशोक—यही तो संघमित्रा कहती थी, तलवार में शौर्य नहीं होता, वह हृदय में होता है। क्यों महामात्य, तुम हृदय की शक्ति को जानते हो ?

राधा०—हृदय की शक्ति को नहीं जानता देव, पर संगीत की शक्ति को अवश्य जानता हूँ। मैं अभी उसका प्रबन्ध करता हूँ। ···(**जाता है, फिर रुकता है।**)···ओह, मैं भूल गया सम्राट्, द्वार पर एक भिक्षु खड़े हैं।

अशोक—भिक्षु मुझसे मिलने आये हैं, इस समय ?

राधा०—सम्राट्, वह कलिंग-कुमार से भेंट करना चाहते हैं।

अशोक—किसलिए ?

राधा०—शायद वे कुमार को···।

अशोक—(**एकदम**)···शायद वह कुमार को मेरी अधीनता स्वीकार करने के लिए राजी करना चाहते हैं।···(**हंसकर**)···महामात्य, जो

काम मैं नहीं कर सकता उसे शस्त्र कर सकते हैं, भिक्षु कर सकते हैं। यह कैसी विडम्बना है ? यह कैसी शक्ति है ? मैं इतना दुर्बल हूँ फिर भी सम्राट् हूँ…नहीं, नहीं, महामात्य, मैं वह शक्ति चाहता हूँ जिसके द्वारा बन्दी का सिर झुका सकूँ। क्या वह शक्ति मुझे मिल सकती है ?

(महेन्द्र का प्रवेश)

महेन्द्र—अवश्य मिल सकती है, सम्राट् ! शर्त केवल इच्छा की है।

अशोक—कौन ? महेन्द्र !

महेन्द्र—आज्ञा सम्राट् !

अशोक—सम्राट्, सम्राट् ? महेन्द्र, तुम भी मुझे सम्राट् कहोगे ?

महेन्द्र—जो आज तक कहता आया हूँ, उसको अचानक बदल देने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।

अशोक—ठीक है महेन्द्र, तुम ठीक कहते हो, परन्तु तुम नहीं जानते उस बन्दी कुमार ने मुझसे कहा था कि सबसे पहले हम साधारण पुरुष होते हैं। मैं अशोक पहले हूँ, सम्राट् पीछे।

महेन्द्र—(हँसकर) और सम्राट् ने उसकी बात मान ली ?

अशोक—तब तो नहीं मानी थी, पर अब मुझे ऐसा लगता है जैसे मुझे कोई अशोक कहकर पुकारे।

महेन्द्र—सम्राट् आज कुछ दीन दिखाई दे रहे हैं। महामात्य, ऐसा क्यों है ?

अशोक—महामात्य को कुछ पता नहीं, महेन्द्र ! वह मेरी वाणी है। सच पूछो तो मुझको भी कुछ पता नहीं। मुझे उस बन्दी ने दया का पात्र बना दिया है। मेरा हृदय जल रहा है। मुझे लगता है जैसे मैं अकेला हूँ, जैसे मैं एक दुर्बल प्राणी हूँ।

महेन्द्र—भइया, यह तुम क्या कह रहे हो ?

अशोक—भइया महेन्द्र, एक बार फिर कहो तो 'भइया'।

महेन्द्र—भइया !

राधा०—सम्राट्, भिक्षु के लिए क्या आज्ञा है ?

अशोक—ओह भिक्षु ! महामात्य, उनके आने से पहले मुझे यह बताओ, क्या मैं कुमार के दण्ड पर फिर से विचार कर सकता हूँ ?

राधा०—सम्राट् सब-कुछ कर सकते हैं, परन्तु उन्हें अपने पद की मर्यादा को समझ लेना चाहिए।

अशोक—सम्राट् के पद की मर्यादा ! तब तो महामात्य, मैं सम्राट् न हुआ, एक बन्दी हुआ।

(उपगुप्त का प्रवेश)

उपगुप्त—जब तक व्यक्ति अपने लिए जीता है, तब तक वह बन्दी ही रहता है। आकांक्षा की परिधि सीमित होती है परन्तु उसकी प्यास बड़ी भयंकर होती है, सम्राट् ! मकड़ी के जाले के समान उसमें फँसकर कोई जीवित नहीं रहा है।

अशोक—भिक्षु उपगुप्त, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, भन्ते !

उपगुप्त—सम्राट् का कल्याण हो, मैं कलिंग-कुमार से मिलना चाहता हूँ।

अशोक—महामात्य ने मुझे अभी बतलाया था, लेकिन मुझे लगता है कुमार से अधिक मुझे आपकी मंत्रणा की आवश्यकता है। अच्छा भन्ते, आप तो चिन्तन करते हैं। क्या कोई ऐसी शक्ति है जो बिना नाश किये विरोधी को पराजित कर सके ?

उपगुप्त—किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है, सम्राट्।

अशोक—(**दुहराता हुआ**) किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

उपगुप्त—सम्राट्, रात बीत रही है।

अशोक—रात बीत रही है, सच क्या रात बीत रही है ? भन्ते, आपने कितनी सुन्दर बात कही है, रात बीतती है, तभी प्रभात होता है।

उपगुप्त—लेकिन आज का प्रभात किसी की मृत्यु का सन्देश लेकर

आ रहा है, सम्राट् !

अशोक—आप कलिंग-कुमार की बात कर रहे हैं, भन्ते ! वह मृत्यु और जीवन से परे हैं, मैं उन्हें दण्ड देने की स्पर्धा नहीं कर सकता, वह स्वतन्त्र हैं। (**सब चकित होते हैं।**)

राधा०—सम्राट् !

अशोक—सुनो महामात्य, कलिंग-कुमार मुक्त ही नहीं हैं, वह अपने राज्य के स्वामी भी हैं।

महेन्द्र—(**अचरज से**) भइया, क्या आप सच कह रहे हैं ?

उपगुप्त—सम्राट्, मैं यह क्या सुन रहा हूँ ?

अशोक—जो कुछ आप सुन रहे हैं वह ठीक ही है, परन्तु ऐसा क्यों हो रहा है यह मैं स्वयं नहीं जानता। रह-रहकर कलिंग-कुमार की बातें मुझे याद आ रही हैं, रह-रहकर रणभूमि का चित्र मेरे नयनों में उभर आता है। रह-रहकर चीत्कार का संगीत मेरे कानों में गूँज उठता है। मैं अब गीदड बनकर श्मशान में खोपड़ियों को नहीं ठुकराना चाहता। मैं मानव बनकर मानव को जीतना चाहता हूं। (**सब चकित पर प्रसन्न मुद्रा से अशोक को देखते हैं।**)

महेन्द्र—भइया, आपने जो काम किया है वह मानव ही कर सकते हैं। आपकी जय हो। आइए आचार्य, हमें शीघ्र ही बन्दीगृह में जाकर कलिंग-कुमार को यह शुभ समाचार देना चाहिए।

उपगुप्त—चलो महेन्द्र (**महेन्द्र और उपगुप्त का गमन**)

राधा०—लेकिन सम्राट्, सिंहल-विजय का क्या होगा ?

अशोक—(**हँसता हुआ**) सिंहल-विजय अवश्य होगी, परन्तु कैसे होगी उस पर विचार करेंगे। अब तो मैं कलिंग-कुमार से मिलना चाहता हूँ। देखो, संघमित्रा दिखाई दे तो उसे भी बुला लो और तुम भी चलो।

राधा०—जो आज्ञा देव ··· (**राधा गुप्त का गमन, सम्राट् फिर घूमने लगते हैं। पदचाप उठते हैं और मिटते हैं। फिर प्रभात का संगीत उठता है। उसी के साथ तथा समाप्त होती है। परदा गिरता है।**)

ऊसर

श्री भुवनेश्वर

पात्र

लड़का

गृह-स्वामी

युवक—एक ट्यूटर

मोटी रमणी

गृह-स्वामिनी

छोटी लड़की

दो लड़कियां

ऊसर

[एक मध्यवर्ग के बँगले का ड्राइंग-रूम छोटा और नीचा पटा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तसवीरें आज ही टाँगी गई हैं, जो कीलें गाड़ने के ताजे निशानों से मालूम होता है। दो दरवाजों और तीन खिड़कियों पर परदे पड़े हैं। वे रोज ही पड़े रहते हैं, आज सिर्फ खिड़कियों के परदों के नीचे की फटी हुई कोरें तुरप दी गई हैं। भीतर के दरवाज़े पर जाली का कटा हुआ परदा है, जिसके लगाने के निशान मैले और पुराने हैं। कार्निस पर बहुत सी तसवीरें और कुछ बड़े घोंघे और शंख रखे हैं। एक 'प्लास्टर ऑव पेरिस' का गांधी का वस्ट भी है। फ़रनीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा और अक्सर बेमेल है—गहरी नीली सुइट पर दो हरे कुशन हैं; एक बरेली वुड-वर्क्स का भी सुइट है जिस पर रेशम से एक बड़ी बत्तख कटी हुई; काली बेंक्स पड़ी हैं; कुछ बेंत की कुरसियाँ हैं जो नंगी हैं और भीतर के दरवाज़े के सामने पड़ी हैं—ऐसी कि बिना उनको हटाए कोई भीतर से आ-जा नहीं सकता। बाहर का ताज़ा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखाई देता है, जहाँ पायदान पर एक भूरा पेकनीज़ दहलीज़ पर सिर रखे सो रहा है और किरमिच की कुरसी पर एक युवक हाथों को जंगलों में भींचे टाँगें हिलाता हुआ, पोर्च में खड़ी बड़ी नीली कार की तरफ़ बड़ी देर से—करीब-करीब जब से वह लाल सुर्खो को दलती हुई और अपने बेलुन टायरों से छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उड़ाती हुई आई है—देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली है।

सहसा भीतर के दरवाज़े से एक आठ बरस का लड़का त्योहारी कपड़े पहने एक कुरसी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और

युवक दोनों चौंक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्राकर फिर सिर टिका देता है और युवक तनिक अपराधी-सा मोटर से नजर हटा लेता है। लड़का सीधा कुत्ते के पास जाता है, उसका एक पैर का मोजा सरककर नीचे आ गया है, जिससे उसकी सफेद बेराठी पिंडली दिखाई दे रही है।]

लड़का—(कुत्ते को जूते से सहलाते और उँगली चटाते हुए) मेरा पिप्पा ! तुम्हें कोई नहीं पूछता, तुम यहाँ अकेले पडे हो, मेरा बू—वी ! (वहीं बैठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँख बन्द किये कान और दुम हिलाता है।) तुम मैले हो···देखो चुपके से जब सब सो जाएँ, तो तुम हमारे बिस्तर पर आ जाना, हम-तुम तो भाई-भाई हैं। हम-तुम, ह··· ह (कुत्ते को उठाता-सा है।)

(भीतर वाले दरवाजे से कुरसियों को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृह-स्वामी का हठ है। वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है, पर उसका कर्रा इस्तरी किया सूट, खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते हैं। लड़का कुत्ते को एक बारगी छोड़कर कमरे में आ जाता है, पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टाँगों से चिपककर खेलने लगता है।)

गृहस्वामी—(दियासलाई से दाँत कुरेदते हुए) यह क्या बदतमीज़ी है ? भीतर मेहमान आये हैं, तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो। (कुरसियाँ देखते हुए) और ये सब कुरसियाँ क्यों बरबाद कर दीं··

लड़का—(चट से) कुरसी ? कहाँ—? यह तो आपने हटाई है।

गृहस्वामी—(खिड़की के बाहर थूककर) और अँग्रेज़ी तो आप सब भूल गए, अब कभी मेहमान आएँ तो आप अपने ट्यूटर के साथ···

(थूकता है। लड़का बाहर की ओर देखता है और युवक, जो गृह-स्वामी के आते ही उठकर खम्भे के सहारे खड़ा हो गया था, भीतर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ता है।)

गृहस्वामी—(युवक से) तुम कहाँ गये थे ? मैं कहता हूँ कि जब रात को तुम्हें पढ़ना हुआ करे तो शाम को साइकिल-बाज़ी न किया कीजिए (थूकता है।) भाईजान, इसमें आप ही का फायदा है।

युवक—(चुप है जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा।)

गृहस्वामी—और तुम भीतर आ सकते थे... (सहसा) और तुमने चाय कहाँ पी ?

युवक—जी नहीं।

[गृहस्वामी जैसे इस जवाब से असन्तुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ से फिरकर एक कुरसी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर अनजाने खिसककर लड़के के पास आना चाहता है। लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ बिना देखे टाँगों से खेल रहा है।]

ट्यूटर—आज तो मिसेज़ सिबल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी—(जैसे उसने मिसेज़ सिबल का अपमान किया हो।) क्या अच्छी हैं ? ज़रा-सी पार्टी पर आप देखिये हफ्ते-भर स्ट्रेण्ड हार्ट से पड़ी रहेंगी। अब उन लोगों को घूम-घूमकर मकान और बाग दिखाया जा रहा है। फिर हम लोगों की...

ट्यूटर—मैं आज आपसे सुबह से कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिज़ी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जाएँगे...

गृहस्वामी—(एकटक उसकी तरफ देखता है, जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल है।)

ट्यूटर—मैं सोचता हूँ कि यह इण्टेलेक्चुअल एक्सपेरीमेंटर का जीवन जो मैं...

(कुत्ता चीख पड़ता है; शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है। ट्यूटर एक छोटी घोड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।)

गृहस्वामी—देखो जी... (लड़का कुत्ता बगल में दबाकर भीतर भाग

जाता है ।)

गृहस्वामी—(ट्यूटर के बोलने का इन्तजार करके) मैं इस भीड़-भड़क्के से बहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते। जब बाहर के आदमी होंगे तो बिलकुल दूसरी ही हो जाएँगी और अपने पति से भी यही उम्मीद करेंगी। मैंने आपके टेबल पर फिंगर बोल, मैंने सुनी भी न थी पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं जैसे हम लोग हफ्ते में दस दिन फिंगर बोल बरतते हैं—हुँ ह...

(ट्यूटर के हँसने का इन्तजार करता है।)

और अगर किसी ने कुरसी पर गीला तौलिया टाँग दिया तो हर एक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा जैसे वह कोई क्यूबिज़्म का डिज़ाइन हो।

ट्यूटर—(गम्भीरता से) अब तो मिसेज़ सिबल अच्छी हैं पहले से।

गृहस्वामी—अच्छी क्या हैं! (रुककर) उम्र का तकाज़ा है। अब देखो बाईस-साल की मैरिड लाइफ़ में·· (रुक जाता है जैसे ट्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं।)

ट्यूटर—(नीची नज़र, हाथ-से-हाथ दबाए) मैं आपसे कुछ कहना चाहता था···मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गए···

गृहस्वामी—(बाहर की आवाजों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ। यह आपकी मेहरबानी है, पर मैं मजबूर हूँ। आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च। मैं कतई मजबूर हूँ। मदरासी मेम २५) पर तैयार थी। मुझे कहना न चाहिए, मैंने सिर्फ आपकी इमदाद की गरज़ से, समझे, यह इन्तज़ाम किया था।

ट्यूटर—मुझे अफसोस है।

गृहस्वामी—(कुछ समझ नहीं पाता) तो तुम बाइसिकल पर कहाँ-कहाँ गए थे?

ट्यूटर—मैं बाइसिकल पर कहीं नहीं गया, मैं गया ही नहीं··· (एकबारगी रुक जाता है।)

(सन्नाटा हो जाता है। पर यह साफ़ है कि किसी का बोलना जरूरी है।)

गृहस्वामी—**(टाँग हिलाते हुए)** मेरा ज़िन्दगी का एटीट्यूड बिलकुल मुख्तलिफ़ है। तुम अपने सोशलिज़्म-ओशलिज़्म के जोश में शायद यह समझ बैठे हो कि ज़िन्दगी का गहरा-से-गहरा मतलब तुम्हारे लिए साफ़ हो गया जैसे कोई बड़ा सरकश-घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया, पर ज़िन्दगी अगर इस तरह लटकों और फारमूलों में बांधी जा सकती तो आज तक कब की खत्म हो जाती। जी···साहब सोशलिस्ट हैं पर आज जो कुछ भी हम 'कुत्तों' के समाज से आप इन्सानों को मिला है हम वापस ले लें—

(ट्यूटर साफ़ है कि इन बातों को निरर्थक समझता है।)

हाँ, हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरियां, हमारे बाज़ार, हमारे···

ट्यूटर—**(उठकर बाहर खिड़की की तरफ़ झांकता है। गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है।)**

गृहस्वामी—क्या वे आ रहे हैं?

ट्यूटर—**(चुपचाप बाहर झाँक रहा है।)**

गृहस्वामी—यह कैसी पार्टी है! **(टहलता हुआ)** आम लोग वाकई···**(फिर बैठ जाता है।)** मैं कहता हूँ कि आने वाली जेनरेशन चाहे वह बिल्लियों की हो या सर्पों की, हमसे अच्छी होगी। हमसे···

ट्यूटर—**(मुस्कराता है।)** वे शायद पीछे से पार्क में चले गये।

गृहस्वामी—**(चौंककर)** पार्क में! और कुसुम की तबीयत स्ट्रेण्ड हार्ट; कैफिया स्परीन—मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता तहज़ीब की तसवीह एक बड़ी दुकान से दी गई थी—ऊपर, ऊपर, ऊपर—चढ़े चले जाइए; पर नीचे ज़मीन की आँतें हमें हज़म करने के लिए बेताब हैं। वाकई आने वाला जेनरेशन—पर मैं कहता हूँ कि कोई जेनरेशन आता नहीं। यहीं ज़मीन की आंतें जब बजाय हजम करने के कै कर देती हैं···

(भीतर कुछ आवाज़ें सुनाई देती हैं। गृहस्वामी सहसा ट्यूटर की तरफ़ कड़ाई से देखता है। ट्यूटर इस नज़र को बचाकर चुपचाप बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाज़े से एक मोटी अधेड़ रमणी भारी बनारसी साड़ी पहने, एक ज़रा दुबली रमणी महीन सफ़ेद बेल लगी सफ़ेद धोती पहने, दो युवतियां दोनों नीली साड़ियां पहने, एक युवक अचकन चूड़ीदार पाजामे में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते हैं, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं, जैसे जवान लड़कियां आपस में हँसती हैं जब एक दूसरे का कोई साहसपूर्ण भेद जानती हैं।)

मोटी रमणी—(पास की कुरसी पर बैठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद बैठिए कहता है।) हम लोग पार्क में चले गये थे। (हाँफकर) आपका डिनोमाइट भी हमने देखा। (हँस पड़ते हैं।)

गृहस्वामी—(जबरन हँसी में शामिल होकर) कैसा डिनोमाइट ?

(युवक ने उन लड़कियों को बिठा दिया है। सफेद धोती वाली भी, जो गृहस्वामिनी है, बैठ जाती है। उसके बैठ जाने पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है, सिर्फ़ युवक खड़ा रहता है।)

मोटी रमणी—आपका डिनोमाइट। (फिर हँसी होती है)

गृहस्वामी—(गम्भीर होकर) खैर, यह तो मज़ाक है पर यह मैं मानता हूं, मेरा यकीन है कि दुनिया के सब गोले बारूद एक आदमी की मरज़ी से चाहे वह हजारों मील दूर बैठा हो, फट सकते हैं।

(अब की वह खुद हँसी शुरू करता है।)

गृहस्वामिनी—यह योग-वोग बहुत जानते थे, अब सब बेचारे भूल गए।

(फिर हँसी होती है, पर पहले से कुछ धीमी)

युवक—पापा का यह ख्याल चाहे मज़ाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताक़त पैदा करनी होगी।

गृहस्वामी—(हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों ? और ऐसी ताकत मौजूद है, अगर हज़रत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचाएगी

तो वह ताक़त काम में लाई जाएगी। बेचारा गाँधी क्या कहता है•••

युवक—गांधी तो सठिया गया है।

(लड़कियाँ आपस में धीमी हँसी हँसती हैं।)

मोटी रमणी—मैं तो वह कुछ जानती नहीं। लेकिन हाँ, अभी विक्टोरिया-सी कोई मलका हो जाय तब फिर ठीक हो जाए। दुनिया पर यह तबाही विक्टोरिया के मरने के बाद आई।

युवक—विक्टोरिया क्या करेगी?

मोटी रमणी—तुम्हारा तो कहीं पता भी न था तब। विक्टोरिया के ही राज में तो सुख था।

गृहस्वामी—खैर लड़ाई-भिड़ाई की तो बात छोड़िए। मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ।

गृहस्वामिनी—क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे? कहीं घूम आयें।

गृहस्वामी—खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कहीं•••।

युवक—**(लड़कियों के पास ही कुरसी खिसकाकर बैठ जाता है। बड़ी लड़की उसकी तरफ देखकर लाज से सिमट जाती है।)** हाँ तो आपका वह किस्सा•••

गृहस्वामी—वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ तो हम लोग आगा तुराव के हाते के पास एक बँगले में रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन ही चार घर मुसलमानों के थे। खैर, हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जाएँ या हम लोग हिन्दुओं की। जब वहाँ गए तो मालूम हुआ कि वे लोग खुद हमसे डरे हुए हैं और लाठियाँ लिए अपने सामान और बीबी-बच्चे लिए जा रहे हैं। हाँ, उसी तरह यूरोप में सब एक-दूसरे से•••

गृहस्वामिनी—बेबी क्या घूमने गया है?

युवक—(**अवाक्-सा**) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे?

(सब अपनी घड़ियाँ देखते हैं।)

छोटी लड़की—(धीरे से) अब साढ़े सात बजे हैं।

गृहस्वामिनि—रिकार्ड सुनिएगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं।

युवक—(ओंठ दबाकर) कोई गाना ही गाइए।

(लड़कियाँ, खासकर बड़ी, शरमाती-सी हैं।)

गृहस्वामी—हाँ बेटियो, गाओ न !

मोटी रमणी—आप गाइए, इन बेचारियों को क्या आता है !

गृहस्वामी—ओहो, तो आप ही गाइए।

(सब हँस पड़ते है और फिर एकबारगी सन्नाटा छा जाता है।)

मोटी रमणी—(युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का किस्सा सुनाओ।

युवक—(ऊबा-सा) विलायत का किस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

मोटी रमणी—ये लड़कियाँ खेलती हैं, इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, मुझे आया ही नहीं।

गृहस्वामी—ब्रिज क्या होगा ? आइए।

(गृहस्वामिनी एकबारगी उठकर भीतर जाना चाहती है।)

मोटी रमणी, गृहस्वामी—कहाँ !

गृहस्वामिनी—(द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए काफ़ी-आफ़ी ही मँगाऊँ।

मोटी रमणी—कॉफ़ी क्या होगी—बैठिए बातें करें—अभी तो खाना खाना है।

(सब फिर हँस पड़ते हैं और घड़ियाँ देखते हैं। सन्नाटा हो जाता है।)

गृहस्वामी—(युवक से) राजाजी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना।

मोटी रमणी—ट्यूटर कौन ?

गृहस्वामिनी—बेबी के लिए रखा है, बवाल-जान हुआ जा रहा है।

गृहस्वामी—(मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से

बहुत ऊँचा है और जो नौकर-मालिक का सम्बन्ध हममें है, इस क़दर हमको छोटा बना देता है कि वह हमारा मुकाबला भी नहीं करता। उनका पाक खयाल है कि वह हम लोगों के साथ एक इन्टेलेक्चुअल एक्स-पेरीमेंट कर रहे हैं।···

(कुछ समझदारी और कुछ ना-समझी से लोग इस विचित्र आदमी पर खुश हो रहे हैं, केवल युवक गम्भीर है।)

गृहस्वामी—उन्हीं का नहीं, आज सब जवान आदमियों का यह हाल है। वे किताबों के अधकचरे असर से बग़ावत तो करना चाहते हैं, पर नहीं कर सकते; और मैं आपसे पूछता हूँ **(एकबारगी युवक की ओर देख-कर नज़र हटा लेता है।)** वह बग़ावत किसके खिलाफ़ है ? आप नेचर से वैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते। आप छत से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताक़त आपका सिर फटने से नहीं रोक सकती··· **(एक बार धीमा पड़कर)** तुम उन्हें समझा देना···

गृहस्वामिनी—मुझे तो आपकी बात पसन्द आई कि विक्टोरिया जैसी मलका कोई हो जाए तो अभी सब ठीक हो जाए, वही बातें फिर लौट आएँ।

मोटी रमणी—**(गर्व से तनकर)** लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा तो ईश्वर है···

गृहस्वामी—खैर, मैं तो यह नहीं मानता···

युवक—**(ऊबा-सा)** आइए कुछ खेलें···

गृहस्वामी—ताश से तो मुझे नफ़रत है, बिलकुल छिछोरा खेल है।

गृहस्वामिनी—फिर क्या खेलें, तुम्हीं बताओ ?

मोटी रमणी—मैं एक खेल बताती हूँ, हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वगैरा **(सब लोग उसकी तरफ़ ग़ौर से देख रहे है।)** एक आदमी, जैसे मैं, कुछ चीज़ों के नाम लूं, जैसे कमरा—

छोटी लड़की—**(चटक आवाज़ में)** नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एक-एक कागज़ और पेंसिल ले लें और कुछ लोग नहीं। एक आदमी बिना

सोचे कई चीज़ों के नाम ले, जैसे—'कमरा' और सब लोग उस लफ्ज़ को सुनकर एकदम जो उनके मन में आए अपने काग़ज़ पर लिख लें, फिर सबके काग़ज़ पढ़े जाएँ।

युवक—क्या खेल है? (**अपने को सँभालकर**) यह तो अच्छी-खासी साइकोलोजिकल स्टडी है।

गृहस्वामिनी—(**उत्साह से**) मैं काग़ज़ लाती हूँ।

(**भीतर जाती है और ज़रा देर में चिट्ठी लिखने का पैड, दो कलम और कुछ पेंसिलें लेकर आती है। लड़कियाँ इस बीच आपस में कुछ फुसफुसाती हैं। गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।**)

गृहस्वामिनी—लीजिए।

(**युवक पैड लेकर सबको काग़ज़ दे देता है। दोनों लड़कियाँ काग़ज़ लेती हैं और फिर रख देती हैं। मोटी रमणी भी काग़ज़ ले लेती है पर फ़ौरन कहती है—**)

मोटी रमणी—मैं—मैं तो नाम लूँगी।

गृहस्वामिनी—(**काग़ज़ लेती हुई**) अरे काग़ज़! लाओ बेटी!

(**लड़कियाँ झेंपती हुई कागज़ उठा लेती हैं और दो पेंसिलें ले लेती हैं। युवक अपना फ़ाउण्टेन पेन निकालकर गृहस्वामिनी (अपनी माता) को दे देता है और खाली हाथ खड़ा है।**)

मोटी रमणी—तुम भी कागज़ ले लो, राजाजी!

युवक—मैं तो नाम लूँगा।

मोटी रमणी—(**पेंसिल उठाते हुए**) अच्छा।

युवक—(**सबको तैयार देखकर**) अच्छा मैं क्या कहूँ? (**हँसता है।**) अच्छा 'कमरा' (**सब लिखते है।**)

युवक—अच्छा, 'बिजली'। (**फिर सब लिखते हैं।**)

युवक—अच्छा-अच्छा 'परम्बुलेटर'। (**फिर सब लिखते हैं।**)

युवक—अच्छा अब क्या—अच्छा, 'सेक्स'।

गृहस्वामी, मोटी रमणी—सेक्स!!

युवक—हाँ-हाँ !

गृहस्वामी—क्यों, सेक्स ?

युवक—यह भी लफ्ज़ है। आपने कहा था बिना सोचे नाम लो।

(सब लिखते हैं।)

युवक—अच्छा बस।

(सबसे पहले लड़कियाँ अपने कागज़ मेज़ पर रखती हैं। सबसे बाद में गृहस्वामिनी)

मोटी रमणी—**(काग़ज़ उठाती हुई)** मैं पढ़ूँगी **(काग़ज़ उलटती-पलटती है।)** सबसे पहले मिस्टर सिवल का पर्चा है।

(पर्चा उठाकर, सब ग़ौर से सुन रहे है।)

मकान 'जिम्मेदारी', ठीक ! बिजली, क्या लिखा है, हां—दिमाग़ बिलकुल ठीक, दिमाग़ ने ही तो ऐसी चीजें निकाली हैं। पेरंम्बुलेटर—'शादी' वाह-वाह; मिस्टर सिवल ! **(गृहस्वामी भद्दा झेंपता है।)** अच्छा सेक्स—'साइंस', बहुत खूब ! अब किसका काग़ज़ है, मिसेज़ सिबल का ?

गृहस्वामिनी—मेरा सबसे बाद में पढ़ियेगा।

मोटी रमणी—नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जाएँगे, तो सुनिए।

गृहस्वामिनी—मेरा बाद में पढ़िएगा।

गृहस्वामी—पढ़ने न दो कुसुम !

मोटी रमणी—अच्छा कमरा—'बाथरूम'।

गृहस्वामी—बाथरूम, बाथरूम क्यों ?

युवक—खैर, यह भी तो कमरा है।

गृहस्वामिनी—अच्छा।

मोटी रमणी—बिजली—'अँधेरा'।

गृहस्वामी—हैं ?

गृहस्वामिनी—बिजली फेल हो जाती है तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूँढ़नी पड़ती हैं ?

गृहस्वामी—कुसुम, यह क्या है ? बेबी क्या पेरम्बुलेटर पर चढ़ने के काबिल हैं ? मैं कहे देता हूँ, तुम लड़कों का सत्यानाश मारे देती हो ।

गृहस्वामिनी—मैंने तो बेबी लिखा था । अपना बेबी थोड़े ही ! तुम्हीं ने कहा था बिना सोचे ।

मोटी रमणी—अच्छा सेक्स—'शाहनजफ़ रोड' ।

गृहस्वामी—यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी—(**अपराधिनी-सी**) तुमने कहा बिना सोचे···

गृहस्वामी—तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी—कुछ नहीं, मैंने वैसे ही लिख दिया ।

गृहस्वामी—वैसे ही ? सेक्स—'शाहनजफ़ रोड' । वाह-वाह !

युवक—पापा, यह तो खेल है । अच्छा अब अगला पढ़िए ।

गृहस्वामी—नहीं, इसे साफ़ हो जाने दीजिए । सेक्स, 'शाहनजफ़ रोड' वाह-वाह ! (**उठकर**) इसके माने क्या हैं ?

युवक—पापा, यह तो खेल है ।

(**मोटी रमणी सब काग़ज़ रख देती है । लड़कियां अपना काग़ज़ उठा लेती हैं । युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है ।**)

युवक—मैं कहता था···

गृहस्वामी—कमरा—'बाथरूम', सेक्स—'शाहनजफ़ रोड' । क्या कहना है ?

(**सब लोग चुपचाप गम्भीर बैठे हैं; केवल युवक कुछ व्यग्र है । पाँच ही मिनट बाद ज़रा-सा परदा खिसकाकर भीतर से नौकर कहता है—मेज लगाऊँ, हुजूर ?**)

गृहस्वामिनी—हाँ-हाँ । (**तेज़ी से उठकर भीतर चली जाती है । भीतर से उसकी आवाज सुन पड़ती है—बेबी आ गया ? नहीं आया अभी ?**)

(**मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं । युवक और गृहस्वामी रह जाते हैं । दो मिनट बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर**

चला जाता है। युवक व्यग्र, बरामदे की तरफ़, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं।)

ट्यूटर—(अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था।

युवक—आप क्या यहीं बैठे थे ?

ट्यूटर—जी हाँ।

युवक—यहीं बरामदे में ?

ट्यूटर—जी हाँ।

युवक—हूँ (टहलता है। ट्यूटर हर जगह अपनी किताब खोजता है।)

युवक—आज पापा से आपकी बातचीत हुई ?

ट्यूटर—जी हाँ।

युवक—क्या बातचीत हुई ?

ट्यूटर—कुछ नहीं, उन्होंने कहा कि आने वाली जेनरेशन चाहे बिल्लियों की हो या साँपों की, पर हमसे अच्छी होगी।

युवक—(चौंककर और ट्यूटर के पास आकर) किसने कहा ?

ट्यूटर—मिस्टर सिबल ने।

(युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है और वह कुरसी पर बैठकर एक अधजली सिगरेट निकालकर सुलगाता है।)

टिप्पणी

एकांकी नाटक

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक एकांकी नाटक अपने विषय-वस्तु, रूप-विधान और शैली के कारण कला का एक स्वतन्त्र रूप बन गए हैं। लक्षण-ग्रंथों में दिए गए विविध नाटक-भेदों में किसी के अन्तर्गत आधुनिक एकांकी को रखना सम्भव नहीं है, इसलिए कुछ लोगों की यह धारणा है कि आज के यन्त्र-युग की तीव्र गतिशीलता और अवकाशहीन व्यस्तता के परिणामस्वरूप ही एकांकियों का जन्म हुआ है। मुक्तक, गीति, कहानी, एकांकी, रेखाचित्र, गद्यकाव्य—साहित्य के इन लघु रूपों का इतना सीधा सम्बन्ध आज के द्रुतगामी जीवन से जोड़ना या इन्हें आधुनिक समाज का प्रतिनिधि रूप-विधान सिद्ध करना आंशिक रूप से ही सत्य कहा जा सकता हैं। क्योंकि यदि देखा जाए तो वास्तव में उपन्यास ही इस युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है, जिसमें आज का जटिल द्वन्द्वपूर्ण सामाजिक जीवन समग्र रूप से प्रतिविम्बित होता है। देश और काल की परिस्थितियों से विषय-वस्तु की ही तरह कला के रूप विधान भी प्रभावित होते हैं, परन्तु ये प्रभाव एकपक्षीय नहीं होते, न केवल मात्र परिस्थितिजन्य ही होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज और साहित्य के इतिहास की परम्पराओं से भी हर नया विकास प्रभावित रहता है। आज के एकांकी नाटक का रूप तो आधुनिक है लेकिन यह कहना ग़लत होगा कि वह सर्वथा नया है और प्राचीन नाट्य-परम्परा से उसके सूत्र नहीं जोड़े जा सकते।

प्राचीन लक्षण-ग्रंथों में रूपक और उपरूपकों के जो भेद गिनाये गए

हैं उनमें से भाण, व्यायोग, अंक, वीथी और प्रहसन—ये पाँच एकांकी रूपक प्रकार हैं। इन एकांकी रूपकों की अँग्रेजी के कर्टेन रेज़र (Curtain Raiser) या आफ्टर पीसेज़ (After Pieces) से तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि कर्टेन रेजर या आफ्टर पीसेज १८वीं-१९वीं शताब्दी के इंगलिस्तान में मुख्य नाटक के प्रारम्भ होने से पहले या बाद में दर्शकों का समय काटने के लिए दिखाए जाते थे। उनका अपना कोई स्तवन्त्र अस्तित्व न होता था और वे अधिकतर भाण और प्रहसन से मिलते-जुलते थे। इसलिए प्राचीन एकांकियों की यदि किसी से तुलना की जा सकती है तो प्राचीन ग्रीस और प्राचीन इटली के लघु प्रहसनों से, जो स्वतन्त्र रूप से विकसित हुए थे। हिन्दी के आधुनिक एकांकी नाटकों का सम्बन्ध हम संस्कृत के प्राचीन रूपकों से जोड़ सकते हैं। यद्यपि आधुनिक एकांकी विषय वस्तु और क़ला की दृष्टि से प्राचीन एकांकी रूपकों से बहुत आगे विकास कर आया है, फिर भी इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि हिन्दी में नाटकों की परम्परा का सूत्रपात करने वाले भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने जो एकांकी लिखे उनमें से 'विषस्य विषमौषधम्' भाण रूपक है, 'धनंजय विजय' व्यायोग की कोटि में आता है, 'अन्धेर नगरी' तथा 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' प्रहसन हैं और 'भारत दुर्दशा' एक रूपक है। इनके पश्चात् श्रीनिवासदास, प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि अनेक लेखकों ने एकांकी लिखे, जिन्हें रूपकों में ही परिगणित किया जाता है। आधुनिक एकांकी से इन रूपकों का शैली-भेद अवश्य है, परन्तु उन्हें हम रूपक कहकर, आधुनिक एकांकियों को उनकी परम्परा और उनके वर्ग से अलग नहीं कर सकते। क्योंकि भारतेन्दु-कालीन एकांकियों की विषय-वस्तु अपने सामयिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन से ली गई थी, यह तथ्य उन्हें आधुनिक जीवन की परम्परा का प्रतिनिधि बना देता है। अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दुयुगीन एकांकी आधुनिक एकांकियों के प्रारम्भिक रूप हैं। उनमें कला का वह विकसित

रूप नहीं मिलता जो हमारे नये एकांकी-लेखकों की कला में विकसित हो रहा है।

हिन्दी के आधुनिक एकांकियों में हमें कला-सम्बन्धी जिस मौलिक नवीनता के दर्शन होते हैं वह एक बड़ी सीमा तक पाश्चात्य नाटककारों की कला से प्रभावित है और यह स्वाभाविक भी था कि इब्सन और बर्नार्ड शा जैसे इस युग के विश्ववंद्य कलाकारों का क्रांतिकारी प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ता। उनके नाटकों ने हिन्दी के अधिकांश नाटककारों और एकांकी-लेखकों को अपनी प्रतिभा का विकास करने में योग दिया है। हमारे नाटककारों की विषय-वस्तु चाहे ऐतिहासिक या पौराणिक हो अथवा वर्तमान जीवन के व्यक्तिगत या साभाजिक संघर्षों से सम्बन्ध रखती हो, उसे नाटक का रूप देने में वह जिस कलात्मक क्षमता का परिचय देते हैं, उसका संस्कार एक बड़ी सीमा तक पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव से हुआ है।

एकांकी नाटक-साहित्य का एक रूप-विधान है। यह कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि एकांकी नाटक का ढांचा और उसकी प्रकृति अर्थात् उसके मूल तत्त्व साधारण नाटक से भिन्न हैं। उपन्यास और कहानी में जो अन्तर है, बहुत-कुछ वैसा ही अन्तर एक नाटक और एकांकी में होता है। जिस तरह एक कहानी को और लम्बा करके उपन्यास नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह एकांकी को भी बढ़ाकर तीन अंकों का पूरा नाटक नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि यह भिन्नता केवल उनके दीर्घ और लघु आकारों पर ही आधारित नहीं है।

एकांकी नाटक केवल एक ही प्रधान नाटकीय घटना को उपस्थित करता है और उसका उद्देश्य एक ही अमिश्रित प्रभाव उत्पन्न करना होता है। दुःखान्त और सुखान्त नाटकों की शैलियों से लेकर भाण और प्रहसन तक की शैलियाँ इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। परन्तु एकांकी नाटक की सफलता के लिए वस्तु का संग-ठन इतने कलात्मक लाघव से करने की आवश्यकता होती है कि उसमें

कथा और चरित्र के विकास के लिए गौण परिस्थितियों की योजना, वर्णन बहुलता, विषयान्तरता आदि का कोई स्थान नहीं होता। आवश्यकता इस बात की होती है कि परदा उठते ही दर्शक का ध्यान खींच लिया जाए और अन्त तक उसे केन्द्रित रखा जाए। इसी कारण एकांकी नाटक में कथावस्तु की योजना का संयोजन और संवादों की सीधी चुभन और मितव्ययता की ओर विशेष ध्यान देना होता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'पृथ्वीराज की आँखें' नामक एकांकी संग्रह में एकांकी की व्याख्या इस प्रकार की है—

"एकांकी नाटकों में अन्य प्रकार के नाटकों से विशेषता होती है। उसमें एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा (क्लाईमैक्स) तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भांति विकसित हो उठती है। उसमें लता की भांति फैलने की विश्रृंखलता नहीं।"

नाटक की कथा-वस्तु अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओं के घात-प्रतिघात से जिस प्रकार विषम परिस्थितियों की अवतारणा करती हुई चरम सीमा तक पहुँचती है, उससे एकांकी नाटक की कथा-वस्तु के विकास की भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए डॉ० सत्येन्द्र ने लिखा है—

"...किन्तु एकांकी नाटक में साधारण नाटक से भिन्नता होती है। उसके कथानक का रूप तव हमारे सामने आता है जब आधी से अधिक घटना बीत चुकी होती है। इसलिए उसके प्रारम्भिक वाक्य में ही कौतूहल और जिज्ञासा की अपरिमित शक्ति भरी रहती है। बीती हुई घटनाओं की व्यंजना चुम्बक की भाँति हृदय आकर्षित करती है। कथानक क्षिप्र गति से आगे बढ़ता है और एक-एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ़ कौतूहल के साथ चरमसीमा में चमक उठती है। समस्त जीवन एक घण्टे के संघर्ष में और वर्षों की घटनाएँ एक आँसू या एक मुस्कान में उभर आती हैं; वे चाहे सुखान्त हों या दुःखान्त।" (हिन्दी-

एकांकी, पृ० १२४)

अधिकतर विद्वानों का मत है कि प्राचीन यूनानी नाटकों में स्थल, काल और कार्य की एकता पर जोर दिया जाता था। उस नियम का निर्वाह साधारण नाटक में चाहे न हो, लेकिन एकांकी में अवश्य होना चाहिए। इस नियम को संकलनत्रय (Three Unities) कहते हैं। स्थल की एकता (Unity of Place) अर्थात् घटनाएँ एक ही स्थान से सम्बन्ध रखती हों, काल की एकता (Unity of Time) अर्थात् नाटक की घटनाएँ एक ही समय की हों और कार्य की एकता (Unity of Action) अर्थात् कृत्य में एकसूत्रता और एकाग्रता हो। इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है और यह केवल बहस का विषय नहीं है। एक सफल एकांकी की रचना में अनेक तत्त्वों का समावेश होता है, जिनका कलात्मक परिपाक लेखक की कल्पना में होना आवश्यक है। प्रतिभाशाली लेखक विषय-वस्तु की आन्तरिक आवश्यकता के अनुकूल किसी तत्त्व को अधिक उभार सकता है और किसी की अवहेलना भी कर सकता है, जैसा कि हिन्दी के अनेक सफल एकांकियों से प्रमाणित है।

एकांकी नाटक की कला पर विचार करते समय हमें उसके दो आवश्यक तत्त्वों पर ध्यान रखना चाहिए। पहला है नाटकीय संघर्ष और दूसरा है चरित्र-चित्रण।

संघर्ष ही नाटक की आत्मा है। यह संघर्ष अन्तर और बाह्य—दोनों प्रकार का हो सकता है और जिस प्रकार का समाज में, उसी प्रकार नाटक में शत-शत रूपों में व्यक्त हो सकता है। बाह्य संघर्ष दो या अनेक व्यक्तियों के बीच या व्यक्ति और समाज के बीच, या व्यक्ति और 'दैव' या 'नियति' के बीच हो सकता है। आन्तरिक संघर्ष पात्र की चेतना में अपने ही स्वभाव के विरुद्ध होता है, अथवा जब बाह्य परिस्थितियाँ हृदय के भावों में एक टक्कर पैदा कर देती हैं, जब कर्तव्य और प्रेम में से एक को चुनना अनिवार्य हो जाता है या जब नाटक के पात्र की नैतिक भावना उसकी महत्त्वाकांक्षा का पूर्ति के मार्ग में अवरोध बनती है, तब ये नाटकीय

परिस्थितियाँ पात्रों के मन में आन्तरिक संघर्ष को जन्म देती हैं।

नाटकीय संघर्ष वास्तव में हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की असंगतियों और अन्तर्विरोधों को ही कलात्मक ढंग से प्रतिबिम्बित करता है। समाज और व्यक्ति या व्यक्ति और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों के वैषम्य से जो असंगति और अन्तर्विरोध पैदा होता है नाटक में उसे अधिक मार्मिक तथा प्रभावकारी ढंग से उपस्थित किया जाता है। यह संघर्ष सामाजिक या व्यक्तिगत जीवन की जितनी ही व्यापक या मूलभूत समस्याओं से उत्पन्न होगा, नाटक की विषय-वस्तु उतनी ही अधिक सार्वजनिक, सार्थक और महत्त्वपूर्ण होगी।

कहा जाता है कि 'कोई भी नाटक चरित्र-चित्रण के धरातल से ऊँचा नहीं उठ सकता।' उदाहरण के लिए 'प्रहसन' या 'भाण' देखकर हम एक क्षण के लिए आनन्दित हो सकते हैं, लेकिन उसका प्रभाव स्थायी नहीं रहता, जैसे कोई चमत्कारपूर्ण उक्ति सुनकर निमिष-मात्र के लिए मुग्ध हो जाएँ। कारण स्पष्ट है कि उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक और गहरा नहीं होता, बल्कि उनमें सत्य को विकृत करके उपस्थित किया जाता है। किसी भी वर्ग की नाटकीय रचना में चरित्र चित्रण का आत्यन्तिक महत्त्व है। नाटक के विभिन्न पात्रों का चरित्र एक दूसरे से भिन्न होना ज़रूरी है; यह भिन्नता उन पात्रों के एक-दूसरे के प्रति आचरण-व्यवहार और रंगमंच पर जो घटित हो रहा हो उसके प्रति उनकी भाव-प्रतिक्रियाओं, मुद्राओं, सम्भाषण के ढंग और कार्यों से प्रकट की जाती है। यह आवश्यक है कि पात्रों की मानसिक प्रति-क्रियाएँ और उनके कार्यों में अनुकूल परस्परता और गहराई हो अर्थात् वे जीवन-वास्तव का प्रतिनिधित्व करते हों। जिस तरह वास्तविक मनुष्य के चरित्र में एकसूत्रता होती है और अकारण ही वह अक्स्मात् अपने स्वभाव के विपरीत कार्य नहीं करता, उसी प्रकार नाटकीय पात्रों के चरित्र का विकास या परिवर्तन भी सकारण और परिस्थितिवश ही हो सकता है। उन कारणों और विशेष परिस्थितियों का चित्रण नाटक में आव-

श्यक है, अन्यथा दर्शक को पात्र कृत्रिम और असामाजिक प्राणी लगेंगे। नाटकीय पात्र वास्तविक मानव-प्राणी होने चाहिएँ और उनके कृत्य भी मानवीय हों, ताकि दर्शक उनके हर्ष-विमर्ष, सुख-दुःख में अपनी पूरी सहानुभूति से दिलचस्पी ले सके।

कथोपकथन (संवाद) चरित्र के निर्माण और विकास में योग देता है। कथोपकथन संक्षिप्त मर्मस्पर्शी, वाक्वैदग्ध्ययुक्त चरित्र की चारित्रिकता को प्रकट करने वाला तथा एकांकी के सूत्र को आगे बढ़ाने वाला होना चाहिए। एकांकी का कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए। स्वाभाविक का अर्थ यह नहीं है कि वादविवाद की तरह कार्य-कारण पद्धति का अनुसरण करे, अर्थात् क से ख और ख से ग और ग से घ की मंज़िलों को एक सीधी रेखा में पार करता हुआ आगे बढ़े। स्वाभाविकता का अर्थ है कि उससे वास्तविक जीवन का भ्रम होने लगे, वास्तविक जीवन के वातावरण की सृष्टि हो जाए और कथोपकथन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाशित कर दे। स्वाभाविकता की व्याख्या करते हुए एक अँग्रेज़ विचारक ने कहा है कि एकांकी का कथोपकथन क से ग से च से ज से ख से ग से ह से च से ट से य से प आदि—इस प्रकार पीछे मुड़कर पलटता हुआ, छलांग मारकर आगे बढ़ता हुआ, मुख्य विचारों को दुहराता हुआ और उन पर ठहरकर उनकी व्याख्या करता हुआ और कभी-कभी ऐसे विचारों को भी संवाद में घसीट लेता हुआ हो जो यद्यपि कथा-वस्तु के लिए प्रत्यक्षतः प्रसंगत नहीं हैं, लेकिन जो वातावरण, चरित्र और यथार्थ जीवन की सृष्टि करने में योग देते हैं। स्वाभाविकता का अर्थ वास्तविक जीवन के वार्तालाप को ज्यों-का-त्यों रंगमंच पर उपस्थित करना नहीं है। कला वास्तविक जीवन का फोटो-चित्र नहीं होती। कला वास्तविक जीवन से प्राप्त सामग्री में से चुनाव करती है, जो अनावश्यक है उसे अस्वीकार कर देती है और फिर उसे नये ढंग से संगठित करके वास्तविक जीवन के सार्थक और सम्भाव्य चित्र का निर्माण करती है, जो वास्तविक जीवन से अधिक वास्तविक, सुन्दर और प्रयोजनशील

हो जाता है और मनुष्य की चेतना और वृत्तियों को अधिकतम नवीन और सामाजिक वनाता है।

नाटक में चरम सीमा का महत्त्व आत्यन्तिक होता है। चरम सीमा नाटकीय घटना के विकास की उस स्थिति को कहते हैं जब जटिल घटनाओं का घात-प्रतिघात दर्शक में भावों का तीव्र उद्रेक कर दे और जब दर्शक का कौतूहल और औत्सुक्य अपने अन्तिम बिन्दु तक पहुँच गया हो। चरम सीमा पर पहुँचते ही बाह्य या आन्तरिक संघर्ष का उद्घाटन और समाधान एक आत्मिक आघात की तरह होता है और सारे संघर्ष को जैसे आलोकित कर देता है। चरम सीमा पर पहुँचकर नाटक समाप्त हो जाता है क्योंकि उसका उद्देश्य पूरा हो चुकता है।

हिन्दी के एकांकी

हिन्दी में एकांकियों की जिस परम्परा का प्रारम्भ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने किया था वह अपने विकास की कई मंजिलों को पार कर आई और हिन्दी के आधुनिक नाटकों में अब हमें निश्चय ही कला का विकसित रूप दिखाई देता है। भारतेन्दुकालीन नाटकों का संक्षेप में हम उल्लेख कर चुके हैं। इन नाटकों की कला पर संस्कृत के नाटकों का विशेष प्रभाव था, यद्यपि बंगला नाटकों के माध्यम से पाश्चात्य शैली का प्रभाव भी इन पर पड़ने लगा था।

उस काल के नाटकों के विषय सामाजिक जीवन से लिए गए थे। इस प्रकार वे हमारे राष्ट्रीय जागरण की प्रारम्भिक चेतना को प्रतिबिम्बित करते हैं और हिन्दी के आधुनिक एकांकी के प्राथमिक रूप कहे जा सकते हैं।

हिन्दी-एकांकियों का प्रथम काल सन् १८७३ से लेकर, जब भारतेन्दु ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' लिखा, सन् १६२६ तक मानना चाहिए जब प्रसाद जी ने अपने 'एक घूंट' एकांकी की रचना की। वास्तव में 'एक घूंट' में ही आकर एकांकी नाटक की आधुनिक शैली का भरपूर

निखार होता है, जिसके कारण डॉ० नगेन्द्र तथा अनेक दूसरे समालोचक उसे हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि 'एक घूंट' के बाद एकांकी-लेखन की परम्परा बहुत तेज़ी से आगे बढ़ी और पिछले बीस-बाईस वर्ष में अनेक प्रतिभाशाली एकांकीकार हमारे साहित्य में पैदा हुए।

प्रसादजी के बाद यों तो सूर्यकरण पारीख, सुदर्शन, जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पं० गोविन्दवल्लभ पंत आदि अनेक लेखकों ने एकांकी लिखे, लेकिन शैली और कला की शिथिलता के कारण साहित्य में अपना विशेष स्थान नहीं बना पाए। लेकिन इस बीच पाश्चात्य नाटककारों, विशेषकर वर्नार्ड शॉ से प्रभावित भुवनेश्वर और एकांकी की टेकनीक के मर्मज्ञ डॉ० रामकुमार वर्मा आदि एकांकीकार उत्कृष्ट कला का विकास कर रहे थे। बाद को श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और दूसरे अनेक एकांकी-लेखक भी इस क्षेत्र में आये, जिनमें से महत्त्वपूर्ण कई लेखकों के एकांकी इस संग्रह में संकलित किए गए हैं। इस पुस्तक में लेखकों के नाटक ऐतिहासिक क्रम से नहीं दिए गए हैं, लेकिन यहां उनका परिचय यथासम्भव ऐतिहासिक क्रम से दे रहे हैं।

नाटक और उनके लेखक

भुवनेश्वर

भुवनेश्वरप्रसाद के छः एकांकियों का संग्रह 'कारवां' सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। इन नाटकों पर बर्नार्ड शॉ के भाव-विचारों का गहरा प्रभाव है। यद्यपि पाश्चात्य विचार-प्रणाली का उनमें इतना गहरा रंग मिलता है फिर भी ये नाटक जब प्रकाशित हुए उस समय हिन्दी-संसार ने उनका हिन्दी-साहित्य में उत्साहपूर्वक स्वागत किया। इसका एक कारण यह भी था कि हमारे मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की खोखली नैतिकता और मिथ्या आडम्बर का निर्ममतापूर्वक इन नाटकों में उद्घाटन किया गया है, जो दर्शक और पाठक को अपने जीवन की वास्तविकता के प्रति झकझोरकर जागरूक कर देते हैं। भुवनेश्वर बर्नार्ड शॉ की अन्तर्भेदी दृष्टि का अपने अन्दर विकास करके भारतीय जीवन और भारतीय मानस को अपने अनुभव से ढालकर मौलिक नहीं बना पाए, जिससे नाटकों में मौलिकता की अपेक्षा अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दी। आजकल सम्भवतः उनका लिखना बन्द-सा हो गया है।

'ऊसर' उनका सर्वश्रेष्ठ एकांकी माना जाता है। इसमें पाश्चात्य सभ्यता से आक्रान्त आडम्बरपूर्ण उच्च मध्य-वर्ग के खोखले जीवन का चित्र मिलता है जो अहंकारग्रस्त और निपट हृदयहीन है, अर्थात् 'ऊसर' के समान है।

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का पहला संग्रह 'पृथ्वीराज

की आँखें' सन् १९३६ में निकला था। इसके बाद उनके 'रेशमी टाई,' 'चारुमित्रा', 'सप्तकिरण', 'विभूति', 'चार ऐतिहासिक एकांकी' और 'कौमुदी महोत्सव' आदि एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। वर्माजी के नाटकों का क्षेत्र ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों हैं। उनकी प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक संघर्षों का सूक्ष्म चित्रण करने की ओर है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्माजी एक श्रेष्ठ एकांकी नाटककार हैं और हिन्दी में एकांकी नाटक को श्रेष्ठ कलात्मक रूप देने में उनका सबसे बड़ा योग है। उनके अधिकांश नाटक दुःखान्त होते हैं और इसी कारण गहरा प्रभाव डालते हैं।

'सम्राट् विक्रमादित्य', जैसा नाम से ही ज्ञात है, एक ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें विक्रम संवत् का आरम्भ किन नाटकीय परिस्थितियों में हुआ, इसका चित्रण किया गया है। इससे अधिक हमें इस नाटक द्वारा विक्रमादित्य-कालीन आर्य और शक जाति के पारस्परिक संघर्ष की झलक भी मिलती है। इस संघर्ष में शक जाति परास्त हुई और विक्रमादित्य के न्यायविधान में बिना आर्यत्व स्वीकार किए किसी शक को साधारण नागरिक का-सा स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं दिखाई देता। नाटक में विक्रमादित्य के उदात्त चरित्र को और भी गौरवान्वित किया गया है, लेकिन छद्मवेशी शककुमार भूमक का चरित्र भी किसी प्रकार कम उदात्त नहीं है, यद्यपि तत्कालीन न्याय-व्यवस्था के अनुसार उसे अपना धर्म-त्याग करना पड़ा।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एक प्रतिभाशाली एकांकी नाटककार हैं। इनका सबसे पहला नाटक-संग्रह 'देवताओं की छाया में' सन् ३८ में प्रकाशित हुआ था। उस समय से 'चरवाहे', 'तूफ़ान से पहले,' 'क़ैद और उड़ान' आदि अन्य संग्रह प्रकाशित हुए। 'अश्क' जी ने दुःखान्त और सुखान्त दोनों प्रकार के सामाजिक और राजनीतिक एकांकी-नाटकों की रचना की है। हास्य और व्यंग-लेखन में वह सिद्धहस्त हैं। साथ ही

गम्भीर मनोवैज्ञानिक संघर्ष का चित्रण करने में भी वह कम सफल नहीं हुए हैं। 'अश्क'जी वर्तमान जीवन के वैषम्य पर तीखे व्यंग्य करते हैं जिससे उनकी विद्रोही चेतना के दर्शन होते हैं। उनका प्रस्तुत नाटक 'अधिकार का रक्षक' उनके प्रारम्भिक नाटकों में से है। इस व्यंग-नाटक में उन्होंने अधिकार-प्राप्त वर्ग के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की दुरंगी नैतिकता का अत्यन्त सजीव और यथार्थ चित्रण किया है। दलित और शोषित वर्ग के प्रति सत्ताधारी वर्ग की मौखिक सहानुभूति और ऊँचे-ऊँचे आदर्शों के मन्त्रोच्चार का खोखलापन नाटक के वास्तविक दीन-दुखी पात्रों के प्रति उनके आचरण-व्यवहार से मूर्तित हो जाता है।

उदयशंकर भट्ट

प्रसिद्ध नाटककार उदयशंकर भट्ट का प्रथम एकांकी नाटक-संग्रह 'अभिनव एकांकी नाटक' नाम से सन् १९४० में प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक 'आदिम युग', 'समस्या का अन्त', 'धूमशिखा' और 'स्त्री का हृदय' आदि एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। भट्टजी के एकांकी नाटक अधिकतर सामाजिक हैं, यद्यपि पौराणिक विषयों पर भी उन्होंने कई एकांकी लिखे हैं। उनके नाटकों में मन का अंतर्द्वन्द्व स्वाभाविक रूप से विकसित होता है और अधिकतर उनके एकांकी दुःखान्त होते हैं। सामाजिक वैषम्य का यह विषादान्त चित्रण मर्म को छू लेता है।

प्रस्तुत नाटक में भट्टजी ने बड़ी व्यंग्यपूर्ण कोमलता से सामन्ती वर्ग-व्यवस्था के ह्रास और उसकी नैतिकता के रूढ़ आडम्बर का चित्रण किया है, जो सामाजिक रूप से उपयोगी कार्य से अलग एक उपजीवी अभिजात्य पर आधारित है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्रजी हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारों में से हैं। इधर कुछ दिनों से उन्होंने एकांकी नाटक लिखने शुरू किए हैं और उनके पाँच ऐतिहासिक

एकांकियों का संग्रह 'अशोक वन' के नाम से प्रकाशित हुआ है। मिश्रजी के नाटकों की शैली अत्यन्त स्वाभाविक और सूक्ष्म है। उनके ऐतिहासिक नाटकों की भाषा अन्य नाटककारों की तरह जान-बूझकर कृत्रिम रूप से संस्कृत-गर्भित नहीं बनाई गई होती। इसी कारण उनके नाटकों की भाषा में प्रसाद गुण अधिक है।

प्रस्तुत नाटक में रामायण से अशोक वन वाली कथा को लेकर मिश्रजी ने उसे एक नये ही ढंग से प्रस्तुत किया है। इससे लेखक ने अपनी आधुनिक नैतिक चेतना को प्रक्षिप्त करके अशोक वन की घटना की एक नई झांकी हमारे सामने प्रस्तुत की है। रावण जानकी का मन वश में करने के लिए अशोक वन में जाता है, परन्तु अकेले नहीं, अपनी रानियों के साथ। परन्तु सीता के ओजस्वी व्यक्तित्व, उनकी उदात्त नैतिक भावनाओं और विवेकपूर्ण कर्त्तव्य-निष्ठा के सामने परास्त हो जाता है।

जगदीशचन्द्र माथुर

श्री जगदीशचन्द्र माथुर एक प्रतिभाशाली एकांकी नाटककार हैं। उनका पहला एकांकी 'भोर का तारा' सन् १९३७ में लगभग विद्यार्थी अवस्था में ही लिखा गया था और प्रयाग विश्वविद्यालय में कई बार अभिनीत हुआ था। इसी नाटक के नाम से उनके एकांकियों का प्रथम संग्रह प्रकाशित हुआ था। उसके बाद और कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है, यद्यपि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में उनके एकांकी यदा-कदा छपते रहते हैं। श्री माथुर की सचेत दृष्टि आधुनिक जीवन के उस वैषम्य के आर-पार देखती है जो रूढ़िग्रस्त संस्कारों और नई सामाजिक प्रवृत्तियों के बीच एक जटिल और अविराम संघर्ष का जनक है। इसी कारण उनके नाटकों में एक प्रबुद्ध कलाकार के संयम के साथ अमानवीय, मानव-स्वाभिमान को चोट पहुँचाने वाली जर्जर मान्यताओं और लोकाचारों पर निर्मम प्रहार रहता है। प्रस्तुत एकांकी में श्री माथुर ने हमारे समाज के ऐसे ही एक वैषम्य को कलात्मक ढंग से चित्रित किया है।

नवोस्थित मध्यवर्ग पढ़-लिखकर रूप का सौदा करता है, अर्थात् विवाह के लिए लड़की देखने की एक प्रथा चल निकली है। यह प्रथा कितनी हृदयहीन है—इसके पीछे छिपी नैतिक भावना कितनी क्रूर और स्त्री जाति के लिए अपमानजनक है, इसका तीखा अनुभव कराना ही 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का उद्देश्य है और लेखक इसमें पूर्णतया सफल हुआ है।

विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर ने इधर अनेक एकाँकी नाटक लिखे हैं। आपका पहला एकाकी-संग्रह 'इंसान' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् उनका दूसरा संग्रह 'क्या वह दोषी था' भी प्रकाशित हुआ। इसमें चार एकाँकी नाटक हैं और चार रेडियो-रूपक हैं। श्री विष्णु प्रभाकर के सामाजिक नाटकों की एक विशेषता यह है कि वे वर्तमान समाज-व्यवस्था के ह्रास और आडम्बर का व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित करते समय पात्रों की मानसिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण करते हैं और उन पात्रों के आडम्बर और रूढ़िग्रस्त स्वभाव के भीतर छिपी सहज मानवता को उद्‌घाटित कर देते हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों मे भी चरित्र-चित्रण और अन्तर्बाह्यद्वन्द्व का उद्देश्य मानव-आदर्शों और मूल्यों का उद्‌घाटन करना होता है। विष्णुजी इस सोद्देश्यता का आरोपण बाहर से नहीं करते, बल्कि नाटकीय घटनाएँ स्वय स्वाभाविक रीति से इस सोद्देश्यता को व्यक्त करती चलती हैं।

प्रस्तुत ऐतिहासिक एकांकी में कलिंग-विजय के बाद अशोक के मानसिक परिवर्तन की कहानी को चित्रित किया गया है। कलिंग-विजय से पूर्व अशोक का शक्ति और हिंसा द्वारा साम्राज्य-विस्तार में विश्वास था। लेकिन कलिंग-विजय के बाद बन्दी कलिंग-कुमार के स्वाभिमान को अपनी तलवार से न जीत पाने पर और कलिंग-कुमार की अजेय मानवीय दृढ़ता के प्रभाव से अशोक का मानसिक परिवर्तन होता है और वह शक्ति को छोड़कर अहिंसा और मानवता में विश्वास करने लगता है।